प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बम्बई राज्य)

पहली बार : ५,०००
सितम्बर, १९५७
मूल्य : आठ आना या
५० नये पैसे

मुद्रक :
बलदेवदास,
संसार प्रेस,
काशीपुरा, वाराणसी

प्रकाशकीय

महात्मा भगवानदीनजी के ये विचार पुस्तक रूप में पाठकों के हाथों में पहुँच रहे हैं। पुस्तक अपने ढंग की स्वतंत्र है और हर विचार भी अपने आपमें स्वतंत्र है।

मनोभावों, वृत्तियों, संस्कारों और स्वभाव-वैचित्र्य का अध्ययन तथा अनुभव उनका अपना है। विचारों के संकलन हिन्दी में और भी बहुत से प्रकाशित हुए है, किंतु मनुष्य के दैनिक जीवन से सम्बद्ध विषयों संबंधी ये विचार, आशा है, पाठकों को गम्भीरतापूर्वक सोचने-समझने की प्रेरणा देंगे।

—प्रकाशक

अनुक्रम

चिन्तन के क्षणों में

स्नेह

१. "स्नेह" शब्द जैसे और शब्द भी हैं—प्रेम, राग, मोहब्बत इत्यादि।

२. प्रेम कहो चाहे राग, स्नेह कहो चाहे मोहब्बत, ये शुद्ध कभी नहीं होते।

३. प्रेम को राग-रहित माना है, पर बस माना ही है, होता नहीं।

४. ईश्वर से प्रेम विशुद्ध प्रेम हो सकता है। पर याद रखो कि वह विशुद्ध कभी नहीं हो सकता। अगर हो सकता होता, तो न भगवान् की मूरत बनती, न मन्दिर।

५. अगर प्रेम विकार है, तो यह है किसका विकार? यह बताना बड़ा मुश्किल है।

६. प्रेम उबाल है। आदमी उसको रोकने की कोशिश करता है। वह रोक पाता नहीं, इसलिए दुःखी होता है।

७. आदमी प्रेम को रोकता क्यों है? सिर्फ इस-लिए कि प्रेम के आधार पर की हुई क्रियाएँ समाज में वर्जित मानी गयी है।

८. चरखा आवाज करके कातनेवाले को यह बताता रहता है कि यह घिस रहा है, कट रहा है, दुःख पा रहा है। उसमें स्नेह या तेल डालकर उसको चुप कर देने से यह समझना कि उसका दुःख दूर हो गया, भारी भूल है। ठीक इसी तरह स्नेह की चुप्पी भली चीज नहीं है।

९. स्नेह में सुख होता नहीं है, सुख मानने की कोशिश की जाती है।

१०. स्नेह में दुःख रुकता नहीं है, दुःख भुलाने की कोशिश की जाती है।

११. अफीम के इंजेक्शन से दर्द मिटता नहीं है, दर्द की तरफ से ध्यान बँटाया जाता है। इसी तरह स्नेह में किये हुए परिश्रम से थकान कम नहीं होती, थकान की तरफ से ध्यान बँटाया जाता है।

१२. सबसे ज्यादा दुःख ईश्वर से स्नेह करने से होता है। ईश्वर से स्नेह करनेवाले सभी रोते मिलेंगे। क्योंकि स्नेही अपने प्यारे के लिए कुछ करना चाहता है और कर पाता नहीं है, यही दुःख है।

१३. स्नेह या प्रेम कोई अच्छी चीज नहीं है। यह आदमी के पीछे लगी हुई बला है। इसके बगैर समाज का काम ही नहीं चल सकता।

१४. स्नेह-धर्म या स्नेह-अधर्म को अध्ययन करने के लिए माँ सबसे अच्छा उदाहरण है। दुःखी होती जती है और बालक की सेवा करती जाती है।

१५. बहुत-से लोग हँसते-हँसते फाँसी पर चढ जाते हैं। इसका न यह मतलब है कि वे मरते नहीं है, न यह मतलब है कि मरते वक्त उन्हें दुःख नहीं होता। पर नाम की खातिर आदमी क्या-क्या नहीं कर डालता ? ठीक इसी तरह समझदार से समझ-दार आदमी स्नेह में किये हुए श्रम से दुःख तो मानता है, पर नाम होने की खातिर उस दुःख को प्रकट नहीं करता।

१६. जर्मनी के राजा विलियम कैसर को किसीसे मिलते वक्त अपनी देह को खास तौर से काबू में रखना पड़ता था। मिल चुकने के बाद उसे ढीला डालना पड़ता था। होता तो यही हाल सबका है, पर उसने कबूल कर दिया। स्नेह और प्रेम में हरएक को इसी रास्ते से गुजरना पड़ता है।

१७. स्नेह एक आवश्यक बुराई है। कम-से-कम उसके गीत गाना तो छोड़ना चाहिए।

१८. स्नेह-शून्यता का नाम वीतरागता है। पर वह तो कोरी कल्पना है। वह अवस्था किसीको प्राप्त ही नहीं होती।

१९. स्नेह-रहित शुद्ध वीतरागी तो पत्थर की मूरत से भी कड़ा होगा।

२०. स्नेह सुनने और देखने के लिए बड़ी अच्छी चीज है, पर छुए कि मरे।

२१. स्नेह की, और सीख! स्नेह की, और पाठशाला! स्नेह की, और खेती! यह तो अपने-आप उगता है।

२२. एक अल्हड़ लड़की बच्चा पैदा होने के दूसरे क्षण ही स्नेह-रस का भंडार बन जाती है।

२३. अगर मोह बुरी चीज है, तो स्नेह और प्रेम भी बुरी चीज हैं। क्योंकि वह उसीकी औलाद हैं।

२४. जितने अंशों में तुम मोह को मीठा समझते हो, उतने ही अंशों में स्नेह और प्रेम भी मीठे होते हैं।

२५. मशीन में हम तेल वहीं-वहीं देते हैं, जहाँ-जहाँ रगड़ की संभावना होती है या जहाँ रगड़ होती है। यही हाल स्नेह और प्रेम का है। आपसी रगड़ को बचाने के लिए प्रकृति इसका उपयोग करती है।

२६. हिंसा के बगर तुम नहीं रह सकते, पर हिंसा को धर्म मानकर किसी काम के न रहोगे। स्नेह और प्रेम के बिना भी तुम नहीं रह सकते,—पर न उसे धर्म मानना, न आत्मा का गुण; वह तो विकार है।

२७. स्नेह तुम्हारा खुद ही पीछा न छोड़ेगा, तुम उसके पीछे पड़कर क्या करोगे?

२८. एक हारा-थका सिपाही सराय की एक कोठरी में सो रहा था। उसीसे लगी कोठरी में एक औरत सो रही थी। उसका एक बारह वर्ष का बच्चा था। उसकी आँखें आयी थीं। वह बच्चा बार-बार रोता था। उसके रोने से सिपाही को नींद नहीं आती थी। वह दु:खी था। उसने सराय-रखवालिन को बुलाया और उस औरत की कोठरी बदलवाने के लिए उसे कुछ पैसे रिश्वत में दिये। वह राजी हो गयी। मेह बरस रहा था। वह औरत निकलने में आनाकानी करने लगी। मामला बहुत बढ़ा। सिपाही ने औरत की आवाज को ध्यान से सुना। मालूम हुआ, वह तो उसकी औरत थी और वह उसीका बच्चा था। उसने आवाज देकर अपनी तसल्ली कर ली। अब तो उसमें अपने बेटे के प्रति नेह जाग आया। अब तक वह दु:खी था, अब महा-दु:खी हो गया। नींद खो बैठा और दवा-दारू में लग गया। यह है नेह का चक्कर!

२९. घरवालों से तुम्हें स्नेह और प्रेम है, इसलिए तुम बहुत दु:खी रहते हो। घर से भागकर साधु बनना चाहते हो। कहीं ऐसा न कर बैठना, बड़ी भारी भूल होगी। तुम जहाँ भी जाओगे, तुम्हारा स्नेह वहाँ कुटुम्ब खड़ा कर लेगा और दुगुने दु:खी हो जाओगे।

३०. स्नेह और प्रेम से डरो मत। डरकर रहोगे कहाँ?

३१. क्या स्नेह मिट सकता है? हरगिज नहीं।

३२. क्या स्नेह कम हो सकता है? हो सकता है, पर मुश्किल से।

३३. स्नेह कम कैसे होता है? लगाव कम करने से। याने मोह कम करने से।

३४. स्नेह करें या न करें? यह सवाल ही नहीं पैदा होता, क्योंकि जन्म से तुम उसे लेकर पैदा हुए हो।

३५. स्नेह किससे करें? जिससे रगड़ कम करनी हो।

३६. स्नेह अगर वृक्ष है, तो उसकी खाद क्या है? प्यारे के प्रति किया हुआ श्रम।

३७. बच्चे के मरने पर एक दिन का शोक और बड़े के मरने पर सात दिन का शोक। यह क्यों? यह यों कि बड़े को पालने-पोसने में ज्यादा मेहनत करनी होती है, इसलिए दु:ख से छुट्टी नहीं मिलती। उसका स्नेह सताता रहता है।

३८. इसे अच्छी तरह ध्यानस्थ कर लो कि स्नेह जागा नहीं कि उसने तुम्हें दु:ख देना शुरू किया नहीं। दूसरे शब्दों में स्नेह दु:ख-ही-दु:ख है। इसलिए जिसे तुम प्यार या स्नेह करते हो, वह दु:खी हो उठता है। क्योंकि वह दु:ख के सिवा और तुमसे पायेगा क्या?

३९. जो माँ-बेटे, जो पति-पत्नी दिनभर में जरा-जरा देर में लड़ते हों, तो समझ लो कि एक-दूसरे को खूब प्यार करते हैं।

४०. वैर में झगड़ा कभी-कभी होता है, प्यार में झगड़ा हरदम।

४१. वैरियों के मिलने पर टक्कर होती है और चट दोनों अलग हो जाते हैं। प्रेमी एक-दूसरे की तरफ खिचकर आते हैं और चिपक जाते हैं। यों वैरी कम दुःखी और प्रेमी ज्यादा दुःखी।

४२. साधु और डाकू की खूब बनती है। ठीक इसी तरह प्रेमी और वैरी की बन सकती है। इसका मतलब है, मित्र मित्रता के स्नेह में डूबा हो और वैरी वैर का रूखापन लिये हो।

४३. प्रेम और स्नेह से बचते रहो, न जाने ये तुम्हें कहाँ पटक देंगे।

४४. प्रेम और स्नेह के साथ इसी तरह बर्ताव करो, जैसे सँपेरा साँप के साथ करता है।

४५. जिस तरह पानी नीचे की तरफ ढुलकता है, उसे सँभाले रखना जरूरी है, वैसे ही प्रेम और स्नेह नीचे की तरफ ढुलकते हैं। इन्हें सँभाले रखना होगा।

४६. तेल यानी स्नेह को ढुलकने से बचाने के लिए दीये की व्यवस्था की गयी है। पर उसके उपयोग के लिए तो जलना पड़ता है, तब कहीं तेल ऊपर को उठता है। ठीक इसी तरह स्नेह और प्रेम को ढुलकने से बचाने के लिए नीति-धर्म

की व्यवस्था करनी पड़ेगी और उसे ऊँचा उठाने के लिए दुःख की भट्ठी में जलना पड़ेगा।

४७. मेंहदी के पत्ते करें किसी गोरी के हाथ से प्रेम, पर सिल पर पिसने के लिए तैयार रहें।

४८. लकड़ी का टुकड़ा करे किसी गोरी के बालों से प्रेम, पर आरे के नीचे चिरने के लिए तैयार रहे, तभी तो कघी बन सकेगा।

४९. हे मिट्टी के ढले, तू गोरी के होठों तक पहुँचना क्यों चाहता है? क्या तुझे पिसना पसन्द है? क्या तुझे चाक पर घूमना पसंद है? क्या तुझे आग में भुनना पसद है? यदि हाँ, तो कर उसके होठों से स्नेह। हमें तो ऐसा मालूम होता है कि तू उन होठों का इतना भूखा नहीं है, जितना नाम का।

५०. प्रेम-कथाएँ लिख-लिखकर कवियों ने समाज का भला किया है या बुरा, यह कहा नहीं जा सकता।

५१. एक कवि को चिढ़कर यह कहना पड़ा कि हे भगवन्, तुमने यह कस्तूरी गरीब हिरन के पेट में क्यों बनायी? यह तो प्रेम-कवि या कुकवियों के पेट में बननी चाहिए थी।

५२. देश-प्रेम के गीत गा-गाकर इन वीर-पुजारियों ने लड़ाइयों को कम किया है या और बढ़ाया है, यह कहा नहीं जा सकता।

५३. प्रेम के आधार पर देश का इतिहास लिखना समाज के लिए घातक है और घातक ही बना रहेगा।

५४. सम्भोग एक प्राकृतिक क्रिया है, पर मनुष्य उसे छिपकर करता है। स्नेह एक प्राकृतिक क्रिया है, उसके गीत क्यों गाते फिरते हो?

५५. शायद ऋषियों ने इसी वास्ते पाँच व्रतों में प्रेम को कहीं स्थान नहीं दिया। अहिंसा और प्रेम एक चीज नहीं है।

५६. न जाने वह कैसा आदमी होगा, जिसने प्रेम को ईश्वर कह डाला। शायद उसका मतलब शुद्ध प्रेम से रहा होगा, जो ईश्वर की तरह अलभ्य है।

५७. धर्म-प्रेम में आकर सत्य को ईश्वर कह डालना इतना ही खतरनाक है, जितना प्रेम को ईश्वर कह डालना। चूँकि ईश्वर अलभ्य और अदृश्य है, निराकार है और वह सब कुछ है, जो कुछ नहीं है याने वह शून्य भी है। तब तो यही हाल सत्य का भी हो जायगा। फिर सत्य पूजा की चीज बन जायगा, अमल करने की नहीं।

५८. किसी कवि को ठीक सूझा, जिसने प्रेम-पाश अलकार ईजाद किया। सचमुच में प्रेम जाल ही है।

५९. प्रेम प्रेम की खातिर तो त्याज्य ही होना चाहिए। जीवन की खातिर, देश की समृद्धि की खातिर, देश की रक्षा की खातिर वह ग्राह्य हो सकता है।

६०. प्रेम पाप है, स्नेह पाप है, अगर वह समाज के लिए कोई रचनात्मक काम नहीं करता।

६१. कहावत तो यह है कि प्यार उसीके प्रति उठता है, जिसमें पहले से ही प्यार होता है। पर यह जरा गहरी बात है। इस पर विचार करना चाहिए।

६२. प्यार पैदा होता है, यह वाक्य ही नहीं बनता। प्रेम भड़क उठता है।

६३. न जाने कबीर साहब ने किस धुन में यह कह मारा था कि 'ढाई अक्खर प्रेम का, पढे सो पंडित होय।' अगर कबीर साहब की बात को हम ठीक ही मान लें, तो फिर हम यह टीका करेंगे कि प्रेम के ढाई अक्षर पढने में सारी अक्ल ठिकाने लग जाती है और आटे-दाल के भाव का पता लग जाता है। फिर तो वह अपने-आप पंडित हो जायगा।

६४. किसी कवि ने अपने एक पात्र से यह भी कहलवाया है कि भाई, देख लिया प्रीत को, मेरी तो यही राय है कि कोई प्रीत न करे। इस रास्ते में दुःख-ही-दुःख है।

६५. तो क्या आप किसी तरह के स्नेह को भी न ठीक समझते हैं, न करने की इजाजत देते हैं? नहीं, नहीं, मैं इजाजत देनेवाला कौन? मेरी इजाजत से होता जाता क्या है? हाँ, अपनी यह राय दिये देता हूँ कि अगर प्रीत में उबाल लाना

ही है, तो वह उबाल सुखदायी उसी समय हो सकता है, जब तुम अपने आपको प्रीत, स्नेह और प्रेम करने लगो।

६६. यह किसे नहीं मालूम कि पंजाबी माताएँ जब अपने बच्चे को प्यार करने लगती हैं, तो उनके मुँह से शब्द निकलने लगते हैं—"तू मुझे इतना प्यारा है कि जी चाहता है, तुझे खा जाऊँ।" और यह वाक्य पंजाबी समाज में वर्जित होना तो एक ओर, आदर के साथ सुना जाता है और माँ की प्रतिष्ठा बढ़ाने में सहायक होता है।

६७. प्रेम का चोटी पर पहुँचना मूर्खता की हद कर देना है।

६८. प्रेम को नेम-रहित कहकर तो कहनेवाले ने कमाल ही कर दिया। नेम-रहित एक ही और चीज है और वह है लड़ाई। इसलिए लड़ाई और प्रेम एक कोटि में आ जाते हैं।

६९. समाज को अगर मूर्खता से भरे दृश्य देखने में आनन्द आता होता, तो प्रेम शायद इतनी प्रतिष्ठा न पा सकता कि जितनी वह पाये हुए है।

७०. अगर हम यह कह दें कि प्रेम और मूर्खता एकार्थ-वाची शब्द हैं, तो पाठकों को हम पर बिगड़ने का हक नहीं। क्योंकि किसने प्रेम की क्रियाएँ मूर्खता से भरी नहीं देखीं ?

७१. औरतें जितने गीत गाती हैं, वे दुःखभरे होते हैं और उस दुःख का कारण होता है प्रीतम, याने प्रीत का पात्र।

७२. आखिर यह प्रेम याने दुःखदायी प्रेम इस संसार में

उग कैसे गया ? इसका कारण सीधा-सादा है। आदमी का कोई सुख ऐसा है ही नहीं, जिसमें दुःख की चाशनी न हो।

७३. सुख का दूसरा नाम है मीठा-मीठा दर्द और यह मीठा-मीठा दर्द प्रेम के काँटे के चुभने से ही होता है।

७४. जिसे प्रेम में तुम सहलाना चाहते हो, उससे तुम्हारा प्रेम कम है; जिसे प्रेम में तुम दबाना चाहते हो, उसके प्रति उससे कुछ ज्यादा है। जिसे तुम पीटना या मार डालना चाहते हो, उसके प्रति सबसे ज्यादा है। मतलब यह कि जितने ज्यादा नियम-विरुद्ध काम तुम कर सकते हो, उतने ही ज्यादा तुम प्रेमी हो। क्योंकि प्रेम नियम-रहित होता है।

७५. कहते हैं, प्रेम में थकान नहीं होती, फिर तो ईश्वर के प्रेमी को हजारों वर्ष जीना चाहिए था, याने मरना ही नहीं चाहिए था।

७६. प्रेम में थकान न होने की बात कहना इतनी ही सचाई लिये है, जितनी यह बात कि नशे में थकान नहीं होती।

७७. प्रेम को घोड़ा बनाये रखने में ही उसके हथकंडों से बच सकोगे। उसके घोड़े बनकर तो तुम कहीं के न रहोगे।

७८. वह कौन-सी बरबादी है, जिसकी जड़ में प्रेम नहीं है।

७९. वह कौन-सा पाप है, जिसकी जड़ में प्रेम नहीं है।

८०. धर्म-प्रेम में गांधी ने जान दे दी, यानी धर्म-प्रेम ने गांधी की जान ले ली।

...

डर

८१. यह क्यों समझ रखा है कि डराये बगैर बालक काबू में ही नहीं आ सकता ? एक बार प्रेम का प्रयोग करके तो देखो। तुम्हें सफलता होगी।

८२. पता नहीं, वह आदमी कैसा रहा होगा, जिसने ईश्वर का डर दिखाकर अपने भाइयों पर अधिकार जमाने की बात सोची होगी।

८३. आदमी ईश्वर से डराया जाता है। शायद उसीका यह परिणाम है कि वह अपने बच्चे को हौवा से डराता है, कुत्ते-बिल्ली तक से डराता है।

८४. डरानेवाले को अगर यह मालूम हो कि डर के क्या-क्या बुरे नतीजे होते हैं, तो वह अपने बच्चे को डराने की बात सोचे ही नहीं।

८५. याद रखो, डर बालक के हृदय में बड़ी जल्दी जड़ पकड़ता है और जल्दी ही गहरी जड़ जमा देता है। वह फिर आसानी से उखाड़ फेंका नहीं जा सकता।

८६. हमसे कहा जाता है कि हमारे अन्दर ईश्वर है और यह हम जानते ही हैं कि हमारे अन्दर डर है। तब क्या हम यह कह सकते है कि ईश्वर के अन्दर भी डर है ?

८७. यह सोचने-समझने की बात है कि खुदा और शैतान के बीच क्या रिश्ता है ? यह तो साफ ही है कि शैतान खुदा से नहीं डरता, क्योंकि वह खुदा की हुक्म-उदूली कर चुका है। तब क्या फिर खुदा शैतान से डरता है ? अगर नही, तो क्यों उसे अपने बंदों को बहकाने देता है ?

८८. बहुत छोटा बच्चा डरता नहीं। डराने से वह रूसता है। डर से डरना उसे बड़ी मेहनत से सिखाया जाता है। पता नहीं, यह सीख इतनी जरूरी क्यों समझी गयी है और इस पर क्यों इतना समय बरबाद किया जाता है।

८९. "ईश्वर से डरो" कहना ठीक है या यह कहना ठीक है कि "ईश्वर है, इसलिए डरने की जरूरत नहीं।"

९०. सचमुच अगर ईश्वर होता, तो हम इतने निडर हो गये होते कि शेर के भगाने के लिए ऐसे ही निहत्थे दौड़ते, जैसे कुत्ते-बिल्ली को भगाने के लिए।

९१. हमारे माँ-बाप हैं, उन्होंने गाय-भैस-घोड़े-गधों पर वह रोब बिठाया है कि हमको निडर कर दिया है। हम कितने ही छोटे क्यों न हों, गाय-भैसों को हाँक ले जाते हैं और घोड़ों-गधों पर काबू पा लेते हैं। अगर ईश्वर होता, तो क्या हमें इतना निडर भी न बनाता कि हम शेर-घोड़ों पर काबू पा सकते और आँधी-पानी से न डरते ।

९२. हमें तो ऐसा मालूम होता है कि आदमी के डर ने ही ईश्वर का रूप ले लिया है। इसलिए ईश्वर डर-ही-डर रह गया है।

९३. बालक किस चीज से डरता है, इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि वह किसी चीज से नहीं डरता। हाँ, जिससे हम डराना चाहते हैं, उससे डरने लगता है।

९४. आदमी ऐसा क्यों करता है कि तुरत के पैदा हुए शेर के बच्चे तक को नहीं मारता। उसे उठा लाता है और पालता है। यह आदमी की कृपा का फल नहीं है, शेर के बच्चे के निडर होने का फल है। बच्चे सब निडर होते हैं, तभी तो हिंसकों से सुरक्षित रहते हैं।

९५. डर को तोड़कर देखा जाय, तो उसके अन्दर द्वेष मिलेगा, घृणा मिलेगी। फिर द्वेपी और घृणित को कौन प्यार करेगा? कौन जीवित रखना पसंद करेगा?

९६. हिंसा डर का परिणाम है, डर का बाह्यरूप है। डर अगर आत्मा है, तो हिंसा उसकी देह है। डर और हिंसा कार्य और कारण कहे जा सकते हैं।

९७. आत्म-रक्षा के लिए हम न तलवार निकालते हैं, न उठाते हैं, न वार करते हैं। वह तो अपने-आप साँस निकलने की तरह निकल आती है, उठती है और विपक्षी पर गिर पड़ती है। तभी तो कानून ने उसे क्षम्य माना है।

९८. डर ऐसी चाबी है, जिससे लड़ाई का द्वार खुल जाता है।

९९. डराते हो! जरा अन्दर झाँककर देखो तो, तुम खुद डर रहे हो।

१००. डर रहे हो, डराओगे ही।

१०१. डर से डरने का ही काम नहीं होता, डराने का भी काम होता है। मेरा ऐसा कहने को जी हो रहा है कि जिस दिन मनुष्य ईश्वर से डरना छोड़ देगा, उस दिन सब लड़ाई-झगड़े ही छोड़ देगा। क्योंकि वह निडर हो जायगा।

१०२. हे ईश्वर! तू हमसे इतना क्यों डरता है, जो हमें डराता रहता है।

१०३. हे ईश्वर! क्या तू हम पर डराये बिना राज्य नहीं कर सकता? क्या यही तेरी सर्वशक्तिमत्ता है?

१०४. डर ने आज तक किसीका भला नहीं किया, फिर न जाने लोग क्यों इसे गाँठ बाँधे हुए हैं?

१०५. 'डरपोक' गाली है, तो फिर वह हर जगह गाली होनी चाहिए।

१०६. दुनिया में डरपोक का कुछ उपयोग है? बहुत-कुछ! बहादुरों की तलवार उसे देखकर हँसती है। बहादुर की तलवार डरपोक पर गिरकर अपने-आपको अपवित्र मानेगी।

१०७. डरपोक तो पहले ही से मरा है। उसे कोई मार-कर क्या करेगा ? गीदड़ों का शिकार नहीं खेला जाता।

१०८. भेड़ सबमें भोला जानवर है, पर गीदड़ से ऊँचा। क्योंकि गीदड़ डरपोक होता है।

१०९. कहते हैं, गुस्से में खाना खाओ, तो सारा खाना गुस्सा बन जाता है। क्या इसी तरह यह नहीं कहा जा सकता कि गुस्से में अगर ईश्वर की प्रार्थना करो, तो वह सब गुस्से में बदल जायगी ? अगर यह ठीक है, तो फिर यह तो ठीक होना ही चाहिए कि अगर डरकर ईश्वर की प्रार्थना रोगे तो और भी ज्यादा डरपोक बन जाओगे।

११०. डर से डर ही सिड़ सकता है।

१११. लड़नेवाले बिना डरे नहीं रह सकते। जिसे किसीका डर नहीं, वह क्यों लड़ेगा ?

११२. यह बिलकुल गलत है कि दो शेर एक जंगल में नहीं रह सकते। यह भी गलत है कि दो साँड आपस में बिना लड़े नहीं रह सकते। हमने स्वयं चार-चार साँडों को एक जगह आराम से बैठे देखा है। शेरों को देखा तो नहीं है, पर अफ्रीका जानेवालों से सुना है कि शेर भी मिलकर रह लेते हैं। उन्हें रहना भी चाहिए, क्योंकि वे एक-दूसरे से नहीं डरते।

११३. यह वाक्य किसने नहीं सुना कि "देखो, इस कमरे में न सोना, यहाँ चींटियों का बहुत डर है। इस खाट पर

मत सोना, इसमें खटमलों का डर है।" क्या इससे यह साफ नहीं हो जाता कि आदमी चींटी और खटमल से डरता है? चींटी और खटमल आदमी से डरते ही नहीं। इसीलिए आदमी खटमल को मारता है और खटमल आदमी का खून चूसता है।

११४. बहादुरी सिर्फ कहने की चीज है। बहादुर कोई होता ही नहीं। मैदानेजंग में मार-मारकर मर जाना बहादुरी नहीं कहला सकती। मुर्गे और मेंढ़े भी लड़ लेते हैं। बहादुर सिर्फ वही है, जो निडर और शांत है। बहादुरी ऋषियों की, संतों की चीज है, सामंतों और राजाओं की नहीं, शेरों और भेड़ों की नहीं।

११५. मरते सब हैं। पर मरना देखा मेंडक का, जो साँप के मुँह में रहते भी अपनी खुराक चींटे पर मुँह मारता है।

११६. लड़नेवाले सब बहादुर डरपोक होते हैं।

११७. लड़ाई के समय हल्ला-गुल्ला करना डरपोकपन का सबसे बड़ा सबूत है।

११८. डर एक वहम है। इसलिए कभी-कभी इसका इलाज मंत्र द्वारा हो जाता है, क्योंकि मंत्र खुद एक वहम है।

११९. ईश्वर का डर, भूत का डर, शाप का डर, कोसने का डर, ये तो आपने सब सुन ही रखे हैं। पर यह न सुना होगा कि प्रतिज्ञा का डर, व्रत का डर, बात का डर और

भी ज्यादा बुरे होते हैं। यह तो आप नोट कर ही लीजिये कि हर डर झूठ बोलने के लिए मजबूर करता है।

१२०. डर और अज्ञान एकार्थवाची शब्द हैं।

१२१. विस्मय डर की हल्की पर्याय है।

१२२. डर से मृत्यु हो जाती है, यह सबको मालूम है। मृत्यु हो जाती है यह ठीक है, पर आत्मा देह जल्दी छोड़ता नहीं है। डर से मरे हुए में जान पड़ जाती है। असल में होता यह है कि डर से देह सिकुड़ती है और देह सिकुड़ने से हृदय की गति बन्द हो जाती है—आदमी मरा हुआ मान लिया जाता है।

१२३. डर से घबराये या बेहोश हुए के लिए मिथ्या सुझाव बड़े कारगर होते हैं। अगर कोई माँ अपने बच्चे की मौत से डरकर वेहोश हो जाय, तो यह कहकर उसे होश में लाया जा सकता है कि तेरा बच्चा अच्छा हो गया।

१२४. हम अपने बच्चों को डर से बचने की सीख तो देते हैं, पर हमें यह पता नहीं है कि हम सीख दे रहे हैं। रिवाज-सा चला आ रहा है। अगर वही सीख जान-बूझकर दी जाय, तो बड़ी कारगर साबित हो सकती है। वह सीख यह है कि बच्चा हमें भूत बनकर डराता है, तो हम डरते हैं और वह खूब हँसता है। वह बार-बार डराता है, हम डरते हैं और वह हँसता है। इससे वह यह पाठ

सीखता है कि न भूत कोई चीज है, न डर कोई चीज

१२५. क्या कभी आपने यह सोचा है कि शेर जब शिकारी के मचान पर चढ़कर धावा करने की कोशिश करता है, तो यह उसकी बहादुरी का परिणाम नहीं होता, उसके डर का परिणाम होता है!

१२६. ढीठता की तह में हमेशा डर रहता है।

१२७. यह मसल मशहूर है कि जब हिरण चारों तरफ से घिर जाय, तो शिकारी के मुकाबले पर उतारू हो जाता है। डर के जाल में फँसकर वह इसके सिवा और कर भी क्या सकता है?

१२८. मसल तो यह मशहूर है कि दबकर चींटी भी काट लेती है। असल बात यह है कि जान जाने के डर से वह अपना अंतिम प्रयास करती है।

१२९. डर से कई बार जान बच जाती है, पर फिर क्या वह जान जान रह जाती है?

१३०. डरपोक बड़ी उमर पा जाते हैं। निडर जवान ही मर जाते है। जीवन के लिहाज से डरपोक भले ही लाभ में रहे, पर निर्मल जीवन के लिहाज से वह बहुत टोटे में रहता है।

१३१. डर के अनेक रूप है। जो आत्मा का ज्यादा पतन करते हैं, वे रूप बुरे माने जाते हैं। जो कम पतन करते हैं, वे अच्छे माने जाते हैं।

...

क्रोध

१३२. क्रोध लेकर हम जन्मे नहीं हैं, इसलिए वह हमारा स्वभाव नहीं हो सकता।

१३३. क्रोध की जड़ में नासमझी, कमसमझी, गलत-समझी रहती है, सही-समझी कभी नहीं।

१३४. छोटे बच्चे को न फटकार सुनकर क्रोध आता है, न गाली सुनकर, न और कुछ सुनकर; क्योंकि उसे इनमें से किसीका ज्ञान नहीं।

१३५. बालक की तरह हमें भी गुस्सा नहीं आता, जब हम सो रहे होते हैं; क्योंकि उस समय न हम फटकार सुन पाते हैं, न गाली।

१३६. क्रोध अगर स्वभाव नहीं, तो क्या है? विभाव है यानी बिगड़ा हुआ रूप!

१३७. बिगड़ा हुआ रूप है तो किसका? और जिसका वह रूप है, वह भी तो क्रोध जैसा होना चाहिए? नहीं, क्रोध जैसा क्यों होना चाहिए? उबला पानी पानी का विभाव है, पानी का बिगड़ा रूप है। पर असली पानी तो गरम नहीं होता। इसी तरह क्रोध क्षमा का बिगड़ा रूप है। क्षमा और शक्ति एकार्थवाची शब्द हैं।

१३८. कहावत है, "कमजोर गुस्सा ज्यादा।" इसे यों भी कह सकते हैं, "जिसमें क्षमता कम है, उसमें क्रोध ज्यादा रहता है।"

१३९. यह लोगों को पता ही नहीं कि माँ-बाप, बड़े-बूढ़े, गुरु-ऋषि सब क्रोध करना सिखाते हैं। नहीं तो हम सीख ही नहीं पाते।

१४०. छोटा बालक जब माँ की फटकार से रोता नहीं है, उल्टे हँसता है, तो फिर माँ बिगड़कर कहती है, "बेहया है, फटकार सुनकर हँसता है।" यही है क्रोध की तालीम।

१४१. बालक पर क्रोध करना या बालक के सामने क्रोध करना, उसे क्रोध करना सिखाना है।

१४२. वीर-रस की कहानियाँ हमें क्षमा नहीं सिखा सकतीं, क्रोध की ही तालीम देती हैं। यही हाल पुराणों का है।

१४३. क्रोध जब भी उबलता है, नुकसान किये बगैर नहीं रह सकता। दूसरों के नुकसान की तो कोई गारण्टी नहीं है, अपना नुकसान वह जरूर कर लेता है।

१४४. क्रोध खुराक चाहता है और उसकी खुराक है देह-बल, वचन-बल, मनोबल।

१४५. हर आदमी क्रोध को जब डाँटने लगता है, तो पहले देह को रोकता है, तब वचन पर काबू जमाता है। मन

को तो कोई-कोई ही काबू में रख सकता है। इसलिए क्रोध कुछ-न-कुछ नुकसान किये बिना जा ही नहीं सकता।

१४६. क्रोध जब भी देह तक आया, तो वह दूसरों का नुकसान तो करेगा ही, पर अपने नुकसान से भी नहीं बच सकता। यह किसने नहीं देखा कि गुस्से में आकर लोग प्रतिपक्षी पर चीनी का प्याला फेंक बैठते हैं, शीशे का ग्लास फेंक बैठते हैं। क्रोधी को यह समझने का हक हासिल नहीं है कि उसने अपनी चीजें तोड़ी हैं। उसे यह समझना चाहिए कि उसने अपनी चीजें तोड़कर भी समूचे राष्ट्र का नुकसान किया है। हर चीज टूटने से उस पर की हुई मेहनत बरबाद जाती है और यह बहुत बड़ा नुकसान है।

१४७. शायद एक भी आदमी ऐसा न मिलेगा, जो क्रोध के बाद पछताया नहीं।

१४८. हर आदमी क्रोध के बाद अपनी जाँच करके देख ले, वह अपने को पहले से निर्बल पायेगा।

१४९. क्या क्रोध करना जरूरी है? बिलकुल नहीं।

१५०. क्या किसी हालत में भी जरूरी नहीं? हाँ, किसी हालत में जरूरी नहीं।

१५१. क्रोध किये बिना क्या सब काम चल सकते हैं? यदि हाँ, तो किस तरह? हाँ, सब काम चल सकते हैं, क्योंकि क्षमा खुद एक गुण है और वह हमें जन्म से मिला हुआ है। क्रोध

उसीका तो विकार है। अगर विकृत गुण से कुछ काम निकल सकते हैं, तो अविकृत गुण से क्यों नहीं?

१५२. क्रोध की जगह अगर हमने अपने बालकों को क्षमा का पाठ दिया होता, और क्षमा का प्रयोग सिखाया होता, तो न अवतारों की जरूरत होती, न रसूलों-पैगम्बरों की, न महापुरुषों की।

१५३. क्रोध के रंग में दुनिया इतनी रँग गयी है कि इस सच्ची बात पर एतबार नहीं कर सकती कि क्षमा से भी सब काम निकल सकते हैं।

१५४. क्षमा अगर पानी है, तो क्रोध उबला पानी है। अब सवाल यह उठेगा कि आग कौन है? क्षमा को क्रोध में तब्दील कौन करता है? इस सवाल का जवाब हर कोई जानता है। जो गुस्सा होता है, वह यह जरूर जानता है कि वह क्यों गुस्सा हुआ। फिर भी हम कहे देते हैं कि क्षमा को गुस्से में तब्दील करनेवाला भय होता है।

१५५. भय बल में आग लगाता है, उसीका नाम गुस्सा है। आग कुछ-न-कुछ जलाकर रहेगी और वह वही तो जलायेगी, जिससे वह जल रही है। क्या अब यह साफ नहीं हो जाता कि गुस्सा बल को कम करता है?

१५६. निर्बल गुस्सा करता है, इसलिए वह और निर्बल हो जाता है। फिर और ज्यादा गुस्सा करता है, निर्बलतर हो

जाता है और निर्बलतम होकर या तो मर जाता है, नहीं तो अपघात कर बैठता है।

१५७. समझदारों की सलाह है कि क्रोध आने पर पानी पी लो। इससे हाथ भी रुक जायँगे और जीभ भी रुक जायगी। और ध्यान बँट जाने से शायद मन भी रुक जाय। पानी अगर धीरे-धीरे पिया जाय, तो और भी अच्छा।

१५८. हमें ऐसा कोई न मिला, जो क्रोध को बुरा न समझता हो और ऐसा भी कोई न मिला, जो सच्चे जी से क्रोध छोड़ना चाहता हो।

१५९. क्रोध है तो लत, पर इतना व्यापक हो गया है कि स्वभाव में बदल गया है। क्रोधी याने स्वभाव से क्रोधी।

१६०. गौर से देखा जाय, तो मनुष्य-समाज का इतिहास क्रोध की कीली पर घूमता-सा मिलेगा।

१६१. माँ को सबने देखा है और फिर यह भी देखा ही होगा कि उसका बच्चे पर का क्रोध कितनी जल्दी प्यार और ममता में बदल जाता है। यह एक तरह का आत्म-शिक्षण है, आत्म-पाठ दान है, अपने-आपको समझाना है—अपने-आप पछताना ही पड़ता है।

१६२. अशोक के स्तम्भ पछतायी आत्मा की देन हैं, प्रफुल्ल और उत्थानित आत्मा की देन नही। तभी तो वे जनता

को कोई पाठ नहीं देते। अजायबघर की चीज बने हुए हैं, दिखावे की चीज का काम दे रहे हैं।

१६३. महान् क्रोधी राजाओं को महान् क्रोधी कहा जाता, तो हर्ज नहीं था, पर उन्हें महान् की पदवी दे डालना इतिहास की बड़ी भारी भूल है।

१६४. और तो और, आदमी ने क्रोध के देवता बना रखे है, उनकी पूजा करता है। आदमी के पागलपन का ठिकाना है?

१६५. आज ऐसे-ऐसे क्रोध के पुजारी मिल जायँगे या यों कहिये, क्रोध-धर्मी मिल जायँगे कि अगर उनसे क्रोध छोड़ने की बात कही जाय, तो कहनेवाला ऐसे ही उनके क्रोध का शिकारी बन जायगा, जैसे वह आदमी किसी हिन्दू या मुसलमान से यह कह बैठे कि तुम अपना हिन्दू या इसलाम-धर्म छोड़ दो।

१६६. हर महापुरुष ने यह चाहा कि उसके नाम से पंथ न बने। पर क्रोध पंथ बनाकर माना। उस धर्म के अनुयायियों में क्रोध आया कहाँ से? उसी महापुरुष से। नहीं तो कहाँ से आता?

१६७. क्रोध का कमल कंकरी से भी कड़ा होता है।

१६८. क्रोध की पूजा रहते वर्ग-रहित धर्म की स्थापना नहीं हो सकती। वर्ग-रहित सरकार तो कैसे भी नहीं बन सकती।

१६९. क्या क्रोध मिटाये मिट सकता है ? हरगिज नहीं। हाँ, दबाये दब सकता है। कोशिश करने से काबू में आ सकता है। इतना बहुत काफी है।

१७०. यह सुनकर अचरज न होना चाहिए कि शराब क्रोध की देन है और उसीकी ईजाद है।

१७१. कवियों ने तो कमाल ही कर दिया है। क्रोध को भाव मान लिया है और रौद्र नाम का एक रस तैयार कर दिया है।

१७२. कुदरत को यह भी क्या पता था कि विचार और भाषा के अनोखे जेवरों से लदा आदमी का बच्चा, और भी ज्यादा प्रेम-बन्धन में बँधने की जगह द्वेष की आग से जलकर, राख के कणों की तरह, हवा की मदद से कण-कण में बिखर जायगा; जगह-जगह कुछ कण-पुंजों का टीला बनाकर जम जायगा ! फिर आये दिन एक टीले के कुछ कण दूसरे टीले में जा मिलेंगे और दूसरे के कुछ कण तीसरे में मिलेंगे या पहले में आ मिलेंगे। यह साधारण-सी बात भी द्वेष की भभक के कारण झगड़े की बात बन जाया करेगी !

१७३. पता नहीं पतिंगा प्रेम में आकर दीपक की लौ पर झपटता है या उसके प्रकाश से चिढ़कर क्रोध में आकर उसे बुझाने के लिए उस पर टूट पड़ता है। क्योंकि पतिंगों के

आक्रमण का हमेशा न सही, तो कभी-कभी यह परिणाम जरूर होता है कि दीपक की लौ का निर्वाण हो जाता है।

१७४. क्रोध के बारे में यह प्रसिद्धि है कि वह अंधा होता है। हो सकता है कि वह कभी-कभी अंधा हो जाता हो। पर असल में क्रोध की नजर बहुत पैनी होती है। वह प्रतिपक्षी पर सोच-समझकर ही धावा बोलता है। हाथी आदमी पर भले ही हमला बोल दे, पर शेर की तो आवाज से ही डरता है।

१७५. काबू में किया हुआ क्रोध नुकसान तो करता है, पर बहुत कम।

१७६. क्रोध को काबू में करने के लिए कहीं क्रोध करना छोड़ न बैठना, प्रतिज्ञा निभेगी नहीं। जान-बूझकर क्रोध करना सीखना।

१७७. अगर आप यह आदत डाल लें कि बच्चों को उनके कसूर की तुरत सजा न दें, तो क्रोध पर बहुत जल्दी काबू पा सकते हैं।

१७८. जब बच्चा कोई काम बिगाड़ दे, तो वह वक्त तो क्रोध करने का हरगिज है ही नहीं। उससे तो डबल नुकसान होगा। चीज-की-चीज खराब जायगी और बच्चे को सीख न मिल सकेगी।

१७९. बच्चे के कसूर करने पर अगर आपको क्रोध

डाटना आ गया, तो यह समझिये कि आपको क्रोध के घोड़े को लगाम चढाना आ गया।

१८०. अगर आपने अपनी घरवाली पर क्रोध करना छोड़ दिया, तब तो यह समझ ही लीजिये कि आप क्रोध-घोड़े की पीठ पर सवार हो गये हैं और लगाम आपके हाथ में है।

१८१. क्रोध से बचने का पाठ सीखने के लिए या क्रोध पर काबू पाना सीखने के लिए गृहस्थ से बढकर दूसरी पाठशाला मिल ही नहीं सकती। उसमें अपना गुरु आपको खुद बनना पड़ेगा और अगर आपमें कोई समझदार बूढ़ा है, तब तो यह समझिये कि आप बहुत ही भाग्यशाली हैं।

१८२. अगर आप अपने घर में बच्चों को न्यायदान देने की कचहरी खोल लें, तो बहुत जल्दी क्रोध पर काबू पा जायँ। न्याय-दान-कचहरी से मतलब है, किसी एक वक्त ही सब बच्चों की शिकायतें सुनना।

१८३. यह तो असम्भव है कि जज को क्रोध न आये। पर उसका क्रोध इतना सूक्ष्म होता है कि साधारण जनता जज से क्रोध का पाठ न लेकर क्षमा का ही पाठ लेती है।

१८४. जब भी मैं यह कहता हूॅ कि "तंग आकर मैंने यह काम किया", तब मै यह तो कहता ही हूँ कि "मैने नाराज होकर काम किया।"

१८५. ईश्वर अधर्म से तंग आकर ही तो अवतार लेता

है। दूसरे शब्दों में अधर्मियों से नाराज होकर अवतार लेता है। नाराजी कितनी ही थोड़ी क्यों न हो, समता-तराजू की डंडी को झुकाये बिना नहीं रहती।

१८६. यह मामूली आदमियों का कहना हो सकता है कि एक मन की तौल में चावल-दो चावल की क्या बात! पर यह गणितज्ञ का कहना नहीं हो सकता। ठीक इसी तरह बहुत भले कामों में 'थोड़े-बहुत क्रोध की क्या बात', ऐसा कोई मामूली आदमी कह सकता है। पर जो सच्चे अर्थों में धर्मात्मा हैं, वे तो उतने को भी बुरा समझेंगे। महाभारत में व्यासजी ने धर्मराज को कहाँ मुआफ किया!

१८७. घरों में क्रोध से क्रोध को दबाने का रिवाज बहुत बुरा है। अगर कोई लड़का अपनी बहन पर नाराज हो रहा है, तो बाप उस लड़के पर नाराज होकर ही उसकी नाराजी को रोकना चाहता है। अगर बाप सफल भी हो जाय, तो उसने नाराजी के वृक्ष को खाद ही दी होती है, काटा नहीं होता।

१८८. यह बड़ी गलत धारणा है कि क्रोध से बहुत-से काम निकल जाते हैं। जब कि होता यह है कि उससे काम के रास्ते में अनगिनत अड़चनें खड़ी हो जाती हैं।

१८९. डंडे के जोर से बालक से या किसी और से काम तो ले सकते हैं, पर यह हरगिज न समझिये कि आगे भी

काम शांति से होता रहेगा। आपको तो फिर डंडा लेकर ही बैठना होगा।

१९०. डंडे से काम लेना ऐसा ही है, जैसे घड़ी का पेंडुलम हिलाकर उस घड़ी से काम लेना, जिसमें चाबी नहीं लगी है।

१९१. पानी सर्वदा ठंढा नहीं होता, नहीं तो उसका बर्फ कैसे बनता ? वह कुछ-न-कुछ गर्मी लिये होता ही है, उतनी गर्मी उसे जीवित रहने के लिए जरूरी है, नहीं तो पानी पानी नहीं रह जायगा। ठीक इसी तरह क्षमा गुण क्रोध-विहीन नहीं होता। अगर ऐसा होता, तो या तो मनुष्य नहीं रहता या समाज के लिए बेकार हो जाता। ऐसी अवस्था को भी क्षमा की या क्रोध की स्वाभाविक अवस्था माना है। इसे छोड़ने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। इतना क्रोध छोड़ा भी नही जा सकता।

१९२. अब इतने क्रोधित हो जाना कि जहर खाकर मरने की नौबत आ जाय या आमरण बदले की आकांक्षा बनी रहे, तब यह समझना चाहिए कि मनुष्य सुधार-कोटि से परे पहुँच गया। ऐसे मनुष्य पर कोई उपदेश असर नहीं करता। ऐसे ही को आपे से बाहर कहते हैं।

१९३. क्रोध में मनुष्य जब यह भूले रहता है कि उसका माता-पिता-गुरु के प्रति क्या कर्तव्य है और समाज के प्रति क्या

कर्तव्य है, तब समझना चाहिए कि उसके क्रोध की सीमा आपे से बाहरवाले से तो कम है, पर वैसे बहुत ज्यादा है। ऐसा आदमी भी गुस्से को जल्दी नहीं खींच सकता।

१९४. कर्तव्यशील मनुष्य अगर समाज के बड़े-बड़े आंदोलनों में भाग न ले, तब यही समझना होगा कि क्रोध ने उसकी समझ पर ऐसा परदा डाल रखा है कि वह यह समझ ही नहीं पाता कि उसमें क्या-क्या शक्तियाँ निहित हैं। फिर वह उनसे काम तो ले ही कैसे सकता है ?

१९५. एक अंश में क्रोध स्वाभाविक तो है, पर जो क्रोध स्वाभाविक है, वह बढ नहीं सकता, उबल नहीं सकता। यहाँ तक कि देह तो क्या, वचन से भी प्रकट नहीं हो सकता। पर वही स्वाभाविक क्रोध बढने या उबलने लगे, तो उस बढ़वारी का कारण वह खुद नहीं होता। उस आदमी का मोह होता है, जिस आदमी का क्रोध बढ रहा होता या उबल रहा होता है।

१९६. मोह के जरा सा कम होने पर भी क्रोध के किले में दरार आ जाती है और ज्यादा कम होने पर उसकी नींव हिल जाती है। और ज्यादा कम होने पर वह धराशायी हो जाता है और स्वाभाविक क्रोध बचा रह जाता है।

१९७. क्रोध से जो काम होते हैं, वे क्रोध के फल नहीं होते। उस आदमी की निर्बलता के फल होते हैं, जिस पर क्रोध

किया होता है। अगर क्रोध फलदार वृक्ष होता, तो हर जगह फल देता, पर वैसा नहीं होता।

१९८. क्रोध कीजिये और जरा सोचने लग जाइये। आपको अपने पर हँसी आने लगेगी।

१९९. क्रोध कीजिये और जरा सोचने लग जाइये। क्रोध गायब।

२००. क्रोध कीजिये और जरा वचन में आने से रोक लीजिये और देखिये, वही क्रोध आपको कितनी शांति देता है।

२०१. वचन में आये क्रोध को क्रिया में न आने दीजिये और देखिये, वही क्रोध आपको ऐसा अच्छा पाठ देगा कि तबीयत खुश हो जायगी।

२०२. जो आपका क्रोध पी जाय, उससे आप डरते रहिये।

२०३. जो आपका क्रोध उगल दे, उससे आप बेफिक्र हो सकते हैं।

२०४. क्रोध तो रबर की गेंद की तरह प्रतिपक्षी से टक्कर खाकर लौटेगा ही। अगर न लौटे, तो यह न समझिये कि वह लौटा नहीं है। बहुत सूक्ष्मरूप से वह लौटकर आप पर वार कर चुका होता है।

२०५. आपने कभी तोप चलते देखी है? यदि हाँ, तो यह भी देखा है कि तोप छूटने के बाद पीछे हटती है? ठीक

इसी तरह क्रोध का गोला आपको मुँहरूपी तोप से निकलकर आपको पीछे ढकेलेगा ही। जरा इसका ध्यान रखिये।

२०६. पुराणकारों ने जगह-जगह यह दिखाया है कि क्रोध की अग्नि में वरसों की तपस्या भस्म हो जाती है। तो क्या उसमें तुम्हारा बरसों का उपकार भस्म नहीं हो जायगा?

२०७. क्रोध करके कभी किसीके हाथ कुछ नहीं लगा। तुम्हारे हाथ भी कुछ नहीं लगना।

२०८. क्रोध बुद्धि के सामने आकर ऐसे खड़ा हो जाता है, जैसे चलते आदमी के सामने दीवार खड़ी हो गयी हो।

२०९. क्रोध की आग को मिट्टी के तेल में लगी आग समझिये। इसको पानी यानी क्षमा से कभी बुझाने की कोशिश न करना। उससे तो वह और भड़केगी। उस पर धूल डालना धूल। यानी उसको मरे हुए क्रोध से बुझाना। मरे हुए क्रोध से मतलब है—नकली क्रोध!

२१०. अगर कोई आदमी क्रोध के नशे में चूर, मशाल हाथ में लिये लोगों के घर जलाता फिर रहा है, तो उसको न तुम क्रोध से रोक सकते हो, न समझा-बुझा सकते हो, न लोभ-लालच दे सकते हो। वह तो बस इसी तरह रुकेगा कि तुम भी अपने हाथ में मशाल ले लो और नकली क्रोध का जामा पहनकर उससे दो कदम आगे हो जाओ और उसके सरदार बन बैठो। फिर वह तुम्हारा सिपाही हो जायगा और जो हुक्म दोगे, वही

करेगा। यानी तुम अगर यह कहोगे कि इन मकानों को जलाने की जगह इन पर कब्जा करना अच्छा रहेगा, तो वह मान जायगा।

२११. क्रोध में चूर दो लड़ते हुए बालकों या लड़ते हुए दो आदमियों को आप न फटकारिये, न समझाने की कोशिश कीजिये। कोशिश कीजिये कि वे लड़ते-लड़ते हँसने लगें। पहले उनकी लड़ाई को कुश्ती यानी मल्ल-युद्ध में तब्दील करने की कोशिश कीजिये और फिर मल्ल-युद्ध को खेल-युद्ध में बदल डालिये। फिर उन्हें हँसी की नदी के किनारे ला खड़ा कीजिये। फिर वह लड़ाई अपने-आप हँसी में तब्दील हो जायगी और बंद तो हो ही जायगी।

२१२. अगर आपको क्रोध नहीं आता है, तो आप यह हरगिज न समझ बैठिये कि आपने क्रोध को जीत लिया है। शायद आप क्रोधित करनेवाली परिस्थितियों से बचे हुए हैं। वैसी परिस्थिति आने पर आप क्रोध कर बैठेंगे।

२१३. अगर आपको क्रोध नहीं आता है, तो आप यह हरगिज न समझिये कि आप क्रोधी नहीं हैं। आपको चाहिए कि आप रोज नकली क्रोध का अभ्यास किया करें और दिन में एक बार से ज्यादा करें, तो और भी अच्छा।

२१४. आप सन्तों-महन्तों और महापुरुषों को देखकर उनके बारे में यह नतीजा हरगिज न निकाल बैठिये कि उन्होंने

क्रोध को जीत लिया है। असल में उनके चेले-चाँटे उनके क्रोध को जाहिर होने का मौका ही नहीं देते। मन में क्रोध महापुरुषों के होता है और वचन तथा हाथ में उनके चेले-चाँटों में होता है। क्या तुमने बल्ब को चमकते नहीं देखा? पर उसे चमकाने-वाली बैटरी किसी और ही जगह होती है।

२१५. राजा अगर क्रोध नहीं करता, तो यह न समझना चाहिए कि वह क्रोधी नहीं है। उसके क्रोध की नलियाँ ऐसी होती हैं, जो दिखाई नहीं देतीं। हाँ, उन नलियों का छेद भर दिखाई देता है। पर उससे यह नहीं समझ सकते कि यह नली राजा के मन तक गयी हुई है।

२१६. किसीने ठीक ही कहा है, 'क्रोध को वश करना हाथी को पछाड़ना है।' पर इसका ज्यों-का-त्यों अर्थ न लगा बैठना। क्रोध को पछाड़ने में इतनी ताकत नहीं लगानी पड़ती, जितनी हाथी को पछाड़ने में। क्रोध न हाथी जितना बड़ा होता है, न हाथी जितना भारी होता है, न हाथी जितना बलशाली होता है। न उसके सूँड़ होती है, न दाँत, न खंभे जैसे पाँव, न कोठी जैसी पीठ। हाँ, क्रोध इतना नुकसान जरूर कर देता है कि जितना एक हाथी कर डालता है। क्रोधी क्रोध में आकर अपनी खड़ी खेती में आग लगा सकता है और ऐसे ही बरबाद कर सकता है, जैसे हाथी अपने पाँव से रौंदकर। पर यह हाथी जैसा क्रोध बहुत ही निर्बल होता है, क्योंकि पानी

के दो घूँट पीने से काबू में आ सकता है। थोड़ी देर चुप रहकर पछाड़ा जा सकता है, आसन बदलकर डराया जा सकता है और बड़ी आसानी से काबू में आ सकता है और मुफ्त में ही आपको हाथी की पदवी मिल सकती है।

२१७. क्रोध को काबू से बाहर समझोगे, तो वह काबू से बाहर मिलेगा। क्रोध को बस में आने योग्य समझोगे, तो वह बस में आ जायगा। क्रोध को पीने लगोगे, पी सकोगे। थूकने लगोगे, थूक सकोगे। दबाने लगोगे, दबा सकोगे। वह चाहे हाथी जितना बड़ा हो और चाहे ज्वालामुखी जितना गर्म, तुमसे हमेशा छोटा रहेगा। क्योंकि वह तुमसे पैदा हुआ है। तुम उसे बस में कर सकते हो और कई बार कर भी चुके हो।

२१८. हम अपने बालक को मुँह लगा सकते हैं, सिर चढा सकते हैं और अँगूठे के नीचे भी रख सकते हैं। यही हाल क्रोध का है।

२१९. एक दिन अपने क्रोध से बातें तो करो। देखो, फिर क्या मजा आता है।

२२०. जिस दिन क्रोध से बातें करना सीख गये, यह समझ लो कि तुम उसे चकमा देना सीख गये।

२२१. यह तो नोट ही कर लो कि क्रोध हमेशा चकमा देता है। तभी तो क्रोध करने के बाद हमेशा पछताना पड़ता है।

२२२. क्रोध हमारे अन्दर क्या है? महाभारत का शकुनि और आल्ह खंड का मायल !

२२३. क्रोध तुम्हारा हाथ तो इस तरह पकड़ेगा, मानो कोई बड़ा भारी साथी आपको मिल रहा हो। पर ध्यान रखिये, वह सारा काम आपसे ही करायेगा। तभी तो हम क्रोध के बाद अपने को दुगुना थका हुआ मालूम करते हैं।

२२४. आप मैजिस्ट्रेटों की देखादेखी क्रोध को अपना सिपाही बनाकर लोगों को पकड़ने के लिए भेजते हैं और जब वह आदमी आपके सिपाही की बेअदबी कर देता है, तब आप उससे जोरदार सिपाही भेजते हैं और यह कभी नहीं सोचते कि आपके सिपाही की बेअदबी होकर आपकी बेअदबी हो रही होती है।

२२५. क्रोध सिपाही के रूप में विश्वस्त सिपाही नहीं, यह तो आप खूब अच्छी तरह समझ लीजिये और इस उपयोग से सदा बचते रहिये। क्रोध करना बड़ा आसान है और इसमें सबसे बड़ा गुण यह है कि पटाखे की तरह आवाज भी खूब करता है और जब आदमी अपने क्रोध को बेकार जाते देखता है, तो वह लोगों के सामने खिसियानी हँसी हँसकर रह जाता है।

२२६. क्रोध कभी सफल तो नहीं हुआ है, लेकिन अगर मान भी लें कि वह सफल होता है, तो कम-से-कम यह तो

देखिये कि उसका प्रतिशत अनुपात कितना है ? शायद एक भी नहीं । फिर इसे क्यों मुँह लगाया जाय ?

२२७. अब जब भी क्रोध आये, तब तुम उसके सिर आ जाओ और उससे तरह-तरह के सवालों की झड़ी लगा दो । उससे कहो कि तू आया ही क्यों ? तुझे बुलाया किसने ? तुझे बुलाने कौन गया था ? है तेरे पास कोई प्रमाण ? बिना बुलाये आता है । इतनी बेहयाई सिर पर लाद ली है कि कोई ठिकाना नहीं ! ...

लोभ, परिग्रह, माया

२२८. अपने के अतिरिक्त दूसरे को अपना समझना परिग्रह है।

२२९. दूसरे को अपना समझना दु:ख है, क्योंकि दूसरा हमारी इच्छा के अनुसार वर्तन नहीं करेगा।

२३०. प्रीति दु:ख का कारण होती है, क्योंकि वह दूसरे से होती है। दूसरा सब तरह हमारे वस में नहीं होता। अपने माने हुए दूसरे का वस में न होना ही दु:ख है। यों परिग्रह दु:ख का कारण है।

२३१. जो दु:ख नहीं चाहता, उसे परिग्रह से बचना चाहिए।

२३२. परिग्रह और ममता अगर एकार्थवाची नहीं हैं, तो एक-दूसरे से ऐसे ही संबंधित हैं, जैसे जड़ और फल!

२३३. यह ठीक है, मनुष्य सामाजिक प्राणी है, दूसरे के बिना नहीं रह सकता; पर दूसरों के बिना तो रह सकता है।

२३४. मैं भूख मिटाये बगैर नहीं रह सकता और भूख मिटाने के लिए मुझे बचपन से दूसरों की जरूरत है; पर मैं भूख मिटाने के लिए दूसरों को हद तो बाँध सकता हूँ। इसीका नाम है—"परिग्रह परिमाण"। इससे सुख मिलता है।

२३५. मैं तुमसे परिग्रह कम करने को क्यों कहूँ ! यों कहूँ कि इसमें मेरा लाभ है और तुम्हारा भी लाभ है।

२३६. दान देना परिग्रह कम करना नहीं है, अगर दान के साथ हमारी ममता भी जाती है यानी यह कि अगर हम यह देखना चाहते हैं कि हमारे दान का क्या उपयोग हुआ ?

२३७. त्याग वेशक अपरिग्रह है।

२३८. त्याग पदार्थ को छोड़े बिना या अलग किये बिना भी हो सकता है; क्योंकि त्याग में "मेरे"-पन की भावना का त्याग करना पड़ता है, पदार्थ का नहीं।

२३९. जो भी कोई साधु बनता है, वह अपने माँ-बाप का वेटा, अपनी औरत का पति, अपनी बहन का भाई तो बना ही रहेगा; फिर भी उन सबका दुःख उसे न दुःखी बना सकेगा, न इनका सुख सुखी ही। यही है परिग्रह-त्याग।

२४०. परिग्रह कम करने के बाद जो श्रम कम कर देता है, वह परिग्रह को नहीं समझा। परिग्रह कम करने के बाद श्रम तो दुगुना और तिगुना भी किया जा सकता है और करना चाहिए भी। परिग्रह-त्याग में तो श्रम-फल का त्याग होता है।

२४१. श्रम तो दंड पेलने में भी होता है, पर उसकी मजदूरी हम नहीं माँगते। क्योंकि उसको हम देह के लिए देह का श्रम मानते हैं। अपना श्रम नहीं मानते।

२४२. अपने या अपने पेट के लिए किये हुए श्रम को हम अपना श्रम कहते हैं। उसके दाम चाहते हैं या उसका फल चाहते हैं। अगर वह नहीं मिलता या मुनासिब नहीं मिलता, तो दुःखी होते हैं। इसीलिए यह सब परिग्रह है।

२४३. बेटे को बेटा समझकर बचाने दौड़ो, तब हो सकता है तुम्हारे हाथ-पाँव फूल जायँ और बचाते-बचाते उसकी मौत का कारण बन बैठो। इसके विपरीत अगर तुम उसे मनुष्य के नाते बचाने के लिए दौड़ोगे, तो तुम्हारे हाथ-पाँव नहीं फूलेंगे और बहुत अंशों में तुम उसे बचा भी लोगे। यों अपरिग्रह बड़े काम की चीज है।

२४४. यह किसे नहीं मालूम कि डॉक्टर अपने बेटे का मार्के का ऑपरेशन खुद नहीं करता, दूसरे डॉक्टरों से कराता है। परिग्रह कितनी बुरी चीज है, उसके लिए यह उदाहरण काफी है।

२४५. ममता शब्द असल में मामता है और मामता शब्द माँ से बना है। माँ को अपनी औलाद से बहुत ममता होती है। इसलिए मुर्दे को जलाने, बहाने या दफनाने का काम आम तौर से मर्द ही करते हैं, औरतें नहीं। औरतों के लिए मर्दों की अपेक्षा परिग्रह-त्याग इसीलिए कठिन होता है।

२४६. लोगों की यह गलत धारणा है कि परिग्रह-परिमाण से सभ्यता का महल ढह जायगा। वह तो और लम्बा-चौड़ा और ऊँचा

हो जायगा। मन्दिर महलों से कहीं ज्यादा लम्बे-चौड़े, ऊँचे और शानदार होते हैं। क्योंकि वे समाज के अपरिग्रह की देन हैं।

२४७. कुएँ के पानी में आदमी डूबकर मर सकता है, पर कुएँ के सारे पानी को अगर मैदान में फैला दिया जाय, तो उसमें तुरत का पैदा हुआ बच्चा भी क्रीड़ा कर सकता है। ठीक इसी तरह एक आदमी की ममता यानी परिग्रह समाज को डुबो सकती है, पर वही ममता समाजभर पर बिखेर दी जाय, तो सबके लिए क्रीड़ा की चीज बन सकती है।

२४८. दूध पीनेवाला बालक माँ के स्तन पर हाथ रखकर गहरी नींद से सो सकता है और फिर शायद सपना भी नहीं देखेगा। पर बड़े बालक को तो अपने खिलौनों की सारी टोकरी सिरहाने रखकर सोना पड़ेगा। फिर भी वह यह सपना देख सकता है कि उसके खिलौने कोई लिये जा रहा है। परिग्रह इसी तरह तो दुःख देता है।

२४९. घर के बाप बनकर रहना परिग्रही बनकर रहना है। घर के प्रबन्धक बनकर रहना अपरिग्रही बनकर रहना है। पहला दुःखदायी है और दूसरा सुखदायी। पहले में सबकी सुविधा और दूसरे में सबकी असुविधा है।

२५०. अफीम की लत छोड़ते बड़ा दुःख होता है, पर छूट जाने पर बहुत सुख मिलता है। यही हाल परिग्रह का है। छोड़ने में दुःख होगा, पर छूट जाने पर सुख-ही-सुख होगा।

२५१. परिग्रही कोई पैदा होता नहीं, परिग्रही बनाया जाता है।

२५२. ऊँचे खयाल से देह बेशक परिग्रह है, इसलिए कहा जा सकता है कि आदमी परिग्रह लेकर पैदा होता है। पर यह किसे नहीं मालूम कि छोटे बालक को अपनी देह से इतनी ममता नहीं होती, जितनी बड़े बालक, जवान और बूढे को होती है।

२५३. बालक भूख से बेशक देर तक रो सकता है, पर गहरी चोट खाकर जल्दी ही चुप हो जाता है; क्योंकि देह से उसे इतनी ममता नहीं होती, जितनी बड़ों को होती है। यही कारण है कि बच्चे की चोट जल्दी अच्छी होती है।

२५४. यह सर्वथा भूल न हो, पर बहुत अशों में भूल है कि बालक इसलिए जल्दी अच्छा हो जाता है कि उसका खून शुद्ध होता है। असल बात यह है कि उसे देह से मोह कम होता है। देर तक बीमार बनाये रखने में हमारा खून कम, हमारा मस्तक ज्यादा कारण होता है। बड़े आदमियों की चोट भी जल्दी अच्छी हो सकती है, अगर उन्हे देह से कम मोह हो।

२५५. यह बात हमें तो सौ फी सदी ठीक मालूम होती है कि नेपोलियन ने अपना १०२ अश बुखार कुछ मिनटों में

ही कम करके ९८॥ कर लिया था, क्योंकि उसे अपनी देह से बहुत कम ममता थी।

२५६. परिग्रह-त्याग सुख ही सुख देता है। हम नहीं समझ सकते कि किसीको परिग्रह-परिमाण में क्यों कठिनाई होती है।

२५७. परिग्रह घटाकर तो देखिये! आप पर प्रेम की बौछार होने लगेगी।

२५८. परिग्रह घटाकर तो देखिये! आपसे सुख सँभाला न सँभल सकेगा।

२५९. परिग्रह घटाकर तो देखिये! दुश्मन तक आपके दोस्त हो जायँगे।

२६०. परिग्रह घटाकर तो देखिये! कुछ ही दिनों में आपको वह आनन्द आने लगेगा कि आप अपने-आप अपरिग्रह-व्रत के प्रचारक बन बैठेंगे।

२६१. परिग्रह पर काबू पाना प्रकृति पर काबू पाना है और यही तो आदमी का लक्ष्य है।

२६२. परिग्रह से बचना अपने पर विश्वास करना और अपने बल पर विश्वास करना है।

२६३. लड़ाई के मैदान में हथियार इतने काम नहीं आते, जितने औसान काम आते हैं। औसान ठीक उसीके रहते हैं, जो अपरिग्रही होता है।

२६४. मारवाड़ियों के बारे में यह मशहूर है कि वे लोटा-डोर लेकर निकलते थे और जहाँ भी बस जाते थे, महल खड़ा कर देते थे। वे असल में घर की चौखट चूमनेवाले नहीं होते थे। वे सच्चे अपरिग्रही होते थे। तभी तो अपने भरोसे निकल पड़ते थे।

२६५. सच्चे सेठ की यही पहचान है कि अपनी करोड़ों की सम्पत्ति को लात मारकर गरीब बन जाय और फिर करोड़ों की संपत्ति खडी कर दे। यह वही सेठ कर सकता है, जो पक्का अपरिग्रही हो।

२६६. सुनते हैं, किसी विलायती सेठ ने दो बार ऐसा किया कि अपनी संपत्ति को त्याग दिया यानी दान में दे डाला और फिर उतनी ही सम्पत्ति खड़ी कर ली। वह जरूर अपरिग्रही रहा होगा।

२६७. जो भी परिग्रह कम करने से कन्नी काटता है, उसे अयोग्य ही समझना चाहिए।

२६८. जो पैसे का पुजारी है, वह परिग्रही है।

२६९. जो पैसे को पैदा करता है, वह परिग्रही नहीं हो सकता।

२७०. अपूर्ण कोई पैदा नहीं होता। पूर्ण पैदा होनेवाला परिग्रह के जाल में क्यों फँसेगा?

२७१. शेर दूसरे दिन के खाने की चिन्ता नहीं करता। दूसरे के मारे हुए शिकार की तरफ नजर भी नहीं फेंकता। महान् अपरिग्रही होने के कारण वह जंगल का राजा समझा जाता है।

२७२. स्वामी राम राजा का अर्थ करते थे रज्ञा हुआ यानी हर तरह से तृप्त यानी पूरा अपरिग्रही। राजा ऐसा न हो, तो वह दु:खी ही रहेगा।

२७३. समाजवाद यानी अपरिग्रहवाद। साम्यवाद यानी पूर्ण अपरिग्रहवाद यानी सुखवाद, आनंदवाद। अपरिग्रह और मारकाट कभी साथ नहीं रहते। अपरिग्रह और शांति जुड़वाँ बहनें हैं।

२७४. व्यक्तिवाद परिग्रहवाद भी हो सकता है और अपरिग्रहवाद भी। यह व्यक्ति के विचारों पर निर्भर है।

२७५. परिग्रह लुटेरों को जन्म देता है। शहद की मक्खी के छत्ते को देखकर रीछ की लार टपक पड़ती है और वह उस पर धावा बोल देता है।

२७६. परिग्रह तिजोरी और तालों का आविष्कार करता है। अपरिग्रह खुले किवाड़ रखता है।

२७७. अपरिग्रही प्रकृति का जंगल इतना फलता-फूलता है कि आदमी को डर लगने लगा है कि कहीं जंगल सारी जगह न घेर लें। परिग्रही किसान की खेती दिन दूनी रात चौगुनी

बढ़ने पर भी इतनी कम पड़ रही है कि आबादी घटाने की योजनाएँ सोची जा रही हैं।

२७८. कुत्ता घास पर बैठकर घास को कम कर देता है, क्योंकि न वह खुद खा सकता है, न खाने देता है, कोरा परिग्रही है। यही काम परिग्रही करता है। तरह-तरह के भण्डारों पर पलथी मारकर बैठ जाता है—न खा सकता है, न खाने देता है। इसीलिए चीज की कमी पड़ जाती है।

२७९. अपरिग्रही वह देवता है, जो सूँघकर तृप्त हो जाता है और खाने के भण्डार को बढा देता है। यों चीजों की इफरात हो जाती है।

२८०. क्यूमन्तांग के राज्य में चीन में चावल नसीब नहीं होता था। चावल की कमी नहीं थी, पर राज्य परिग्रही था। नये चीनी राज्य में वही चावल का भंडार इतना बढ गया कि चीनियों से खाये न पडा और लगे दूसरे मुल्कों को भेजने। राज्य जो अपरिग्रही बन गया।

२८१. जो अपरिग्रही होता है, वह संतोषी होता ही है। जो संतोषी होता है, वह सुखी होता ही है।

२८२. जिस घर में परिग्रही होंगे, उस घर में खींचतान होगी ही और फिर खाने की कमी पड़े बिना न रहेगी। पर वे ही यदि अपरिग्रही बन जायँ, तो किसीको खाने की कमी न रहे।

यह सबकी आजमायी हुई बात है कि खाना बढ़ता नहीं है, खराब नहीं होने पाता। और यह कौन कम बढ़वारी है?

२८३. परिग्रह याने हाय! हाय!! अपरिग्रह याने वाह! वाह!!

२८४. परिग्रह एक विचारधारा है, जो इस भय से पैदा होती है कि मै अधूरा हूँ, अपूर्ण हूँ। अपरिग्रह दूसरी विचार-धारा है, जो इस विश्वास से पैदा होती है कि मै हर तरह पूर्ण हूँ। विचार ही भूत खड़े करता है और विचार ही उन भूतों का नाश करता है।

२८५. आदमी नशे की चीजें शुरू-शुरू में कम खाता है, पर वह अपने-आप बढ़ती चली जाती हैं। यही हाल परिग्रह के नशे का है। आदमी को पता भी नहीं चलता और वह बढता चला जाता है। परिग्रह का दुःख सहते-सहते दुःख सहने का अभ्यस्त हो जाता है। दुःख में रस मिलने लगता है।

२८६. आदमी परिग्रही बनता है, फिर कुटुम्ब परिग्रही बनने लगता है, गाँव-का-गाँव अपरिग्रही हो जाता है और जब यह बीमारी देशव्यापी हो जाती है, तब अपरिग्रही का मजाक उड़ने लगता है। अब देशभर को अपरिग्रही बनाना बेहद मुश्किल काम है। परिणाम यह होता है कि दूसरे देश उस पर आक्रमण कर देते हैं और फिर वह परदेशियों की सेवा के लिए अपनी

परिग्रह-वृत्ति को जीत देता है। क्या लोगों ने मक्खियों को पालने और उनसे शहद बनाने का काम लेते नहीं देखा ?

२८७. अपरिग्रह है खुली हुई रूई और परिग्रह है प्रेस में कसी-कसाई गाँठ। एक पानी में तैर जायगी, एक पानी में डूब जायगी। एक आसानी से देश के बाहर जा सकती है, दूसरी मुश्किल से। एक के ढेर में आप दब जाइये, आपका कुछ न बिगड़ेगा, एक के नीचे आप आ जाइये, आप पिचकर जान गँवा बैठेंगे। परिग्रह और अपरिग्रह में चीजों की कमी-वेशी का सवाल नहीं है। उस विचार का सवाल है, जो उन चीजों के प्रति रहता है।

२८८. यह किसे नहीं मालूम कि बोझ से डूबती नाव को अपरिग्रह ही तरा सकता है।

२८९. अपरिग्रह कहाँ काम नहीं आता ? हर आफत से बचाता है।

२९०. अपरिग्रह और त्याग चाहे बिलकुल एक न हों, पर एक-दूसरे के सदा साथ रहते हैं।

२९१. दो साधु थे। एक के पास एक पैसे का परिग्रह था, दूसरे के पास एक कौड़ी भी न थी। आयी नदी। नाव की उतराई थी एक पैसा। पैसेवाले ने पैसा दे दिया। जिसके पास पैसा नहीं था, उसको मल्लाह ने यों ही बैठा लिया। दोनों पार उतर गये। पैसे का परिग्रही साधु बोला, "देखो, पैसा

कैसा काम आया।" दूसरा बोला, "पैसा काम आया या अपरिग्रह काम आया ? अब हम-तुम दोनों समान रूप से अपरिग्रही हैं।"

२९२. परिग्रही लीक-लीक चलनेवाली रेल का इंजन है, अपरिग्रही किसी भी रास्ते चल पड़नेवाला घुड़सवार है।

२९३. परिग्रह न साथ आया, न साथ जाता है। जो साथ आता और जो साथ जाता है, वह है अपरिग्रह।

२९४. ऋषि-मुनि जंगल में बहुत सुखी थे, क्योंकि सब राज छोड़कर आये थे, यानी अपरिग्रही बनकर आये थे। क्या वे तुम्हें दुःखी होने की सलाह देते ?

२९५. तपस्या ऊँचे दरजे का अपरिग्रह है। कहीं यह न समझ बैठना कि तपस्या दुःखदायी होती है। जिसमें भी दुःख मिले, वह तपस्या ही नहीं है। तपस्या वही है, जो निरंतर सुख दे। तपस्या का लक्षण है इच्छाओं को वश में करना, न कि जाड़ों-गरमी मरना। इच्छाओं का त्यागना अपरिग्रह है। इसलिए तपस्या उच्च कोटि का अपरिग्रह है और बड़ी आनन्द-दायक होती है।

२९६. तपस्वी अगर कुटी में खुश और कमली में खुश, इसके विपरीत अगर वह महल में दुःखी और दुशाले में दुःखी, तो तपस्वी नहीं है; क्योंकि वह अपरिग्रही नहीं है।

२९७. कुटी पत्थर की गुफा होती है, महल पत्थर का मकान होता है। कमली भेड़ का बाल होती है, दुशाला भी भेड़ के बालों से बनता है। इन दोनों में जो अंतर करेगा, वह परिग्रही है। वह महल में भी दुःखी रहेगा और कुटी में भी।

२९८. मुझे यह देखकर परिग्रही या अपरिग्रही मत कहो कि मैं क्या पहने हूँ। मुझे यह देखकर ताड़ो कि मेरे चेहरे पर हँसी खेलती है या उदासी। और अगर मन टटोल सको, तो और भी अच्छा। मन टटोलना बहुत आसान है। मुझे भड़काकर मेरा मन मुझसे उगलवा लीजिये।

२९९. एक परिग्रही अपरिग्रही का बाना पहनकर शायद लोगों को धोखे में डाल सके, पर अपने चेहरे और मन को क्या करेगा? वह तो इस तरह चमक उठेंगे, जैसे धूल के नीचे चिनगारी।

३००. पिंजड़े को प्यार करनेवाला तोता भले ही समझ ले कि वह बिल्ली से सुरक्षित है, और प्यालियों से चने की दाल चुगकर और पानी पीकर भले ही वह यह भी समझ ले कि वह खूब खुश है, पर कभी उसने यह सोचा है कि उसके पंख उड़ना भूल गये हैं। और यह कितने दुःख की बात है कि वह अपना बचाव अपने-आप करना भूल गया है।

३०१. अगर बालटी से पानी पीनेवाला और तोबड़े से दाना खानेवाला घोड़ा सुखी है, तो कुछ दिनों ही जंगल में

रहकर मोटा क्यों हो जाता है ? क्या यह इस बात का सबूत नहीं है कि अपरिग्रह जितना परिग्रह सुखदायी नहीं है।

३०२. कुत्ता अगर अपने पट्टे को गहना समझे, तो उस-सा मूर्ख कौन होगा ? परिग्रही अपने परिग्रह को अगर सुख का साधन मान बैठे, तो उसे हम क्या समझें और क्या कहें ?

३०३. दुनिया में कम लोग है, जो अपनी मूर्खता को मूर्खता कहते हैं। वे तो उसे बुद्धिमानी ही मानते हैं। इसी तरह परिग्रही अपने परिग्रह को बुद्धिमानी का ही फल समझता है।

३०४. परिग्रही को अगर यह पता लग जाय कि उसका सारा परिग्रह अपरिग्रही की जूठन है, तो उसे कैसा लगेगा ?

३०५. पक्षी अपनी हर नयी संतान के लिए नया घोंसला तैयार करते हैं। पर यह परिग्रही आदमी एक ही घर में अनेक बच्चे पैदा कर लेता है और अपने को बुद्धिमान् और सुखी मानता है।

३०६. आप खुशी से परिग्रही बनिये, पर यह नोट कर रखिये कि आप सुस्त और आलसी बन जायँगे और अगर परिग्रह बढता रहा, तो आप पर इतनी चरबी छा जायगी कि आपको आबदस्त लेने के लिए भी नौकर रखने पड़ेंगे।

३०७. यह किसे नहीं मालूम कि नाव का लंगर नाव में ही रहता है और नाव के चलने में बाधक नहीं होता, पर वही

लंगर नीचे डाल दिया जाय, तो नाव को चलने नहीं देता। यही हाल परिग्रह का है। परिग्रह कंधों पर भारी नहीं, पर जहाँ उसको खूँटी से बाँधा, तो जरा-सा परिग्रह भी आपको इतना भारी लगने लगेगा कि आप कदम न उठा सकेंगे।

२०८. मडला एक छोटा-सा कसवा है, जिसके चारों तरफ नदी बहती है। उसमें बाढ आ गयी। बाढ में कसबे का बहुत अश बह गया। एक पक्की हवेली की तो बुनियाद तक का पता न चला। उसके अन्दर रखी हुई तिजोरी पानी में बहुत खोजने पर भी न मिल पायी। ऐसे मंडला कसवे को हम कांग्रेस के एक पदाधिकारी की हैसियत से देखने पहुँचे। वहाँ वह आदमी सबसे ज्यादा खुश मिला, जिसकी हवेली बुनियाद से नष्ट हो गयी थी और जिसका कुछ भी न बचा था। हमने उस आदमी को बुलाकर उसकी प्रसन्नता का कारण पूछा। उसने छूटते ही जवाब दिया, 'रो तो रहा है मेरा भानजा। मै रोकर क्या करूँ? मै तो अपना सब कुछ उसीके नाम कर चुका था। मेरा कुछ खोया ही नहीं है' यह है अपरिग्रह!

...

स्फुट

३०९. आदमी हर काम से थकता है। हर इंद्रिय का काम, काम। इसलिए देखने, सुनने, चाखने और छूने, सभी से थकान होती है। इस सचाई को ध्यान में रखकर ही आप किसी दूसरे से बात किया कीजियेगा।

३१०. कहावत है, जब तक कोई पूछे नहीं, तब तक बोलना नहीं चाहिए और अगर कोई बुलाये नहीं, तो उसके जाना नहीं चाहिए। इन कहावतों में इतना और जोड़ा जा सकता है कि पूछने पर भी मुनासिब और परिमित शब्द ही मुँह से निकालिये। बुलाये जाने पर भी मुनासिब वक्त तक ही ठहरिये। जिद्द करने पर भी न रुकिये।

३११. अगर आदमियों के साथ बर्ताव करना आ गया, तो आपको सब कुछ आ गया। अगर आपको रूठे को मनाना आता है, तो आपको बहुत कुछ आता है।

३१२. अगर आपके दोस्त आपको सच्चा बताते हैं, तो मै आपको सच्चा मानने में जरूर झिझकूँगा। अगर आपके बैरी आपको सच्चा बताते हैं, तो मैं बिना झिझक आपको सच्चा मान लूँगा।

३१३. आदमी को आदमी मानने के सिवा आदमियत और हो ही क्या सकती है?

३१४. आदमी को आदमी न समझने के सिवा हैवानियत और हो ही क्या सकती है?

३१५. देवता या ईश्वर बनकर क्या करोगे? आदमी तो बन लो। आदमी बनने के लिए देवता तरसते रहते हैं। आदमी बनकर ही ईश्वर दुनिया का भला करता है।

३१६. कलाकारों ने देवत्व का चित्र खींचा, ईश्वरत्व की मूर्ति बनायी। इन्हीं पर काव्य लिखे। आदमियत इन्हें क्यों नहीं याद आयी? अदृश्य चीज इन्हें दीख गयी और दृश्य आँखों से ओझल हो गयी!

३१७. आदमी, आदमी पर वार करके आदमियत को राहत देता है, क्या उसने यह कभी सोचा? आदमी की उमर सौ-सवा सौ बरस की होती है। पर वह हर क्षण कुछ से कुछ होता रहता है। इसलिए उसकी उमर एक क्षण बैठती है। अब अगर वह अपने कामों की उमर घटा दे, तो वह बहुत सुखी हो सकता है। यानी ऐसी चीजें तैयार न करे, जो बहुत बरस कायम रहती हैं।

३१८. हवा हमारे अंदर जाती है, पर निकल आती है। इसलिए वह सबसे ज्यादा जरूरी है और सबसे ज्यादा कीमती है। पानी हमारे अन्दर जाता है और कुछ देर से निकलता है।

इसलिए हवा से उसका मूल्य कम है। खाना और भी ज्यादा देर लेता है, इसलिए उसका मूल्य और भी कम है।

३१९. इस दुनिया रूपी सराय में जो ज्यादा देर टिकता है, समझ लो, उसने उस काम को बहुत सुस्ती से किया है, जो उसके सिपुर्द हुआ था। जो जल्दी चल देता है, वह जरूर चुस्त समझा जाना चाहिए। खाट पर पडकर मरनेवाले इस हिसाब में नहीं हैं।

३२०. जो आदमी जानवरों की जान बचाने के लिए अपनी जान देने को उतारू हो जाता है, तो क्या वह यह भूल जाता है कि जान बचाने के लिए अनगिनत आदमी पड़े हैं?

३२१. ऐसा मालूम होता है कि आदमी को लड़ाई ज्यादा प्यारी है। क्योंकि शांति का उपयोग वह लड़ाई की तैयारी में करता है।

३२२. शांति यानी लड़ाई की तैयारी का समय। क्या यह समय बढ़ाना ठीक रहेगा? क्या यह बढा हुआ समय ज्यादा भयानक सिद्ध नहीं होगा?

३२३. आप जब कोई कथा पढ़ते हैं, तो जिस जगह गद्गद हो जायँ, समझ लीजिये कि वहाँ जरूर कोई धर्म-कृत्य के दृश्य का वर्णन है। यानी वहाँ जरूर कोई किसीके साथ भलाई करते हुए दिखाया गया है। उसीको अपने चित्त पर अंकित कर लीजिये। समय पर काम आयेगा।

३२४. कुमारी अध्यापिकाएँ माँ-रूपी पैदाइशी अध्या-

पिकाओं से क्यों जाकर नहीं पूछतीं कि वे अपने बच्चों को इतनी जल्दी कैसे बोलना सिखा लेती हैं ? और कैसे चलना-फिरना, उठना-बैठना, रहना-सहना और तरह-तरह के लोगों से अलग-अलग ढंग से बरतना।

३२५. मर्द औरत के बिना आधा, औरत मर्द के बिना आधी। ठीक इसी तरह राज मजदूर के बिना आधा और मजदूर राज के बिना आधा। वैज्ञानिक हाथ के कारीगर के बिना आधा, हाथ का कारीगर वैज्ञानिक के बिना आधा।

३२६. मकान बनाते समय आजकल के लोगों को इस बात की फिक्र ज्यादा रहती है कि मकान खूब पक्का कैसे बने ? जब कि पहले इस बात का खयाल ज्यादा रखा जाता था कि मकान खूब आरामदेह यानी सुखदायी कैसे बने।

३२७. यह किसे नहीं मालूम कि पक्के पेढे इतने स्वादिष्ट नहीं होते, जितने कच्चे पेढे। टिकाव स्वाद के दामों मिलता है, उसे क्या करोगे ?

३२८. घी में टिकाव है, इसलिए स्वाद कम। दही में स्वाद है, इसलिए टिकाव कम। टिकाव यानी कड़क। सौंदर्य यानी मृदुता या मुलायमपन।

३२९. क्या कभी आपने यह सोचा है कि सबल की रक्षा निर्बल किया करते हैं और बहुत अच्छी कर लेते हैं। क्या कड़ी हड्डी की रक्षा मुलायम मांस अच्छी नहीं कर लेता ? क्या

कड़े काँच के ग्लास को टूटने से बचाने के लिए रूई के गालों में लपेटकर नहीं रखते? क्या प्रोटोन से हजारों गुना निर्बल नेट्रोन उसकी रक्षा नहीं करता?

२३०. नारियल के कड़े छिलके को प्रकृति ने भूल से या जबरदस्ती यह काम सौंप दिया कि वह अपने अंदर के मुलायम जल की रक्षा करे। पर उस छिलके ने ऐसी रक्षा की कि उस पानी को ही कड़ा बना डाला। और अपने पासवाले पानी को तो अपने से भी ज्यादा कड़ा बना डाला। प्रकृति ने भी फिर छिलके को खासी सजा दी। उसको तिनके-तिनके कर डाला और जटाओं में बदल दिया। सबल सदा निर्बलों की ऊटपटाँग तरीके से रक्षा करते हैं।

२३१. सफेद कपड़ा इसलिए अपने-आपको काला बनाना पसंद करता है कि वह सोने के काम को और भी ज्यादा चमका सकेगा। ठीक इसी तरह जिसे तुम काली रात कहते हो या समझे हुए हो, वह भीतर से परोपकारी प्रकाश है, जो चाँद-तारों को चमकाने के लिए काला बन बैठा है।

२३२. यह सूझ ठीक नहीं है कि पहले अँधेरा ही अँधेरा था, फिर प्रकाश हुआ। नहीं, पहले प्रकाश ही प्रकाश था, फिर अँधेरे को जन्म दिया गया। क्योंकि खालिस प्रकाश में सृष्टि की रचना नहीं हो सकती। उसके लिए अँधेरा एकदम जरूरी है। पुरुष से माया, माया से पुरुष नहीं।

३३३. किसी ऋषि ने यह कहकर क्या नहीं कह दिया कि जो ब्रह्मांड में, वही पिंड में। तुम किसी पिंड को आँख खोलकर अध्ययन ही कब करते हो? जिन्होंने किया, उनका कहना है कि एक-एक अणु एक-एक सौर जगत् है।

३३४. अगर तुमको एकदम अलहदा छोड़ दिया जाय, तो क्या तुम यह समझते हो कि फिर तुम न रोओगे, न हँसोगे, न बोलोगे, न खेलोगे, न कूदोगे? नहीं, ऐसा बिलकुल नहीं होगा। क्या तुमने सोते हुए छोटे बच्चे को हँसते-रोते नहीं देखा? इससे यही सिद्ध होता है कि सुख-दुःख, लड़ाई-भिड़ाई, झगड़े-टंटे पहले हमारे अंदर शुरू होते हैं, बाद में बाहर होते हैं।

३३५. जब आदमी यह कहता है कि यह बात तो मेरे विचार में ही नहीं समा सकती, तब वह काव्य की भाषा बोल रहा होता है, गणित की नहीं। विचार में तो क्या-क्या नहीं समा सकता। इसका हिसाब भी नहीं लगाया जा सकता। विचार में न समानेवाली सारी चीजें, सारे आविष्कार विचार ही की तो देन हैं। आदमी भले ही माँ के पेट में न समा सके, पर वह पैदा माँ के ही पेट से हुआ।

३३६. आदमी ने पीकदान बनाया, पेशाब-घर बनाये, टट्टी-घर बनाये, इसी तरह अगर उसने क्रोध-घर, लड़ाई-घर बनाये होते, तो वह जगह-जगह तो न लड़ता फिरता होता।

२३७. जिस तरह नाटक में हम विना दुःख माने रो लेते हैं और विना सुख माने हँस लेते हैं, क्रोध बिना लड़ लेते हैं, अगर इसी तरह हम जगत्-व्यवहार चला सकते होते, तो फिर नाटकों की जरूरत ही न रह जाती और गीता की रचना ही न होती। शृंगार-शतक लिखकर ब्रह्मचारी तैयार करने की बात करना ऐसे ही है, जैसे पानी में गोता लगाकर सूखे निकल आने की बात करना।

२३८. स्वर्ग की देवांगनाओं का लालच देकर आप कितने दिन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करा सकेंगे?

२३९. अगर दूकान खोलकर बैठना दूकानदारी है और दुनियादारी है, तो संन्यासी बनना दुनियादारी क्यों नहीं?

२४०. संत दुनिया में रहते हैं, जैसे और दुनियादार रहते हैं।

२४१. जो खाये और पहने और काम से इनकार करे फिर भी अपने को धर्मात्मा समझे, तो इससे बड़ी भूल और क्या हो सकती है?

२४२. इसमें स्त्रियों का कसूर है या मर्दों का कि अब तक महापुरुष तो हुए, पर कोई महानारी नहीं हुई?

२४३. यह क्या बात है कि भगवान् सूअर-रूप में पैदा हुए, कछुए-रूप में पैदा हुए, मच्छ-रूप में पैदा हुए, पर नारी-रूप में कभी पैदा नहीं हुए? नारी तो नर-मादा, दोनों को जन्म देती है।

३४४. पंडिताई पंडिताई की हैसियत से देश की तरक्की के लिए जहर है, पर पंडिताई देश-सेवा में लगकर देश की तरक्की के लिए अमृत है।

३४५. जैसे आदमी को अपने जवान-बूढे होने का पता नहीं चलता, वैसे ही उसको अपने साधु होने का भी पता नहीं चलना चाहिए। जब कोई यह कहता है कि आज से मैं साधु हुआ, तब वह किसी बात का प्रचार करना चाहता है; साधु होने की बात यों ही गढता है।

३४६. न जाने क्यों, जब मैं अपने दोष देखने में लगता हूं, तब ऐसा मालूम होने लगता है कि किसीमें दोष रह ही नहीं गये।

३४७. हे मन, जब तुमने किसीको दोषी ही मान लिया, तो फिर उसका इन्साफ करने का ढोंग क्यों रचते हो?

३४८. मन के भाव-सागर में जो तरंगें उठती हैं, उसकी ऊँचाई सुख और निचाई दुःख है, सुख-दुःख और कुछ नहीं।

३४९. समय समझदारों के हाथ में मशीन है। वह उससे बड़ा काम लेते हैं। वही समय नासमझों के हाथ में खिलौना है, वह उसे लेकर काम भूल जाते हैं।

३५०. विश्वास और श्रद्धा क्या नहीं कर सकते?

३५१. जब तुम अपने से हजारों गुना बड़े पहाड़ से अपने मतलब का अपने बल से टुकड़ा काट लेते हो, तब तुम बड़े-से-बड़े काम के हिस्से करके उसको क्यों नही कर सकते?

३५२. दुनिया उसकी, जो इसको अपनी कहने की हिम्मत दिखाये और तन-बल, मन-बल और आत्म-बल से काम ले।

३५३. कर्म ही कर्म, कर्म ही धर्म। कर्म का कर्म ही मर्म, कर्म ही तदबीर, कर्म ही तकदीर, कर्म ही रंक-राव, कर्म ही वजीर, कर्म ही राम-नाम, कर्म ही पूजा, कर्म ही माया-पुरुष और कौन दूजा!

३५४. जिस पर जी आ गया, उसमें जी लगेगा ही और वह मिलेगा ही।

३५५. हे मन, मूर्खों के मालिक न बनो, ज्ञानियों के दास बनो।

३५६. हे मन, तुम्हारी दासी कल्पना समुद्र की तह में जा सकती है, आसमान में थैकली लगा सकती है और तुमसे अंधश्रद्धा की कोठरी पार नहीं की जाती, यह क्या?

३५७. हे मन, तन न काम करने से थकता है और न काम से डरता है, वह तो तुम्हारी चिन्ता से थकता और डरता है।

३५८. पैसे से न पवित्र काम हुए, न होते है, न होंगे।

३५९. जो मुझे प्रेम करता है, वह मुझे पतित कैसे होने देगा?

३६०. मन से हारकर निकले हो, तो जहाँ जाओगे, वहीं हारोगे। अगर मन मारकर निकले हो, तो जहाँ जाओगे, वहीं मैदान मारोगे।

३६१. जो स्वाधीनता का मोल आँकना जानता है, वह न दान लेता है और न कृपा चाहता है।

३६२. श्रम करो, नहीं तो स्वाधीनता गिरवी रखनी पड़ेगी या बेचनी पड़ेगी।

३६३. सर्वनाश के बीज को समझदार स्वार्थ नाम देते आये हैं।

३६४. मीठे बोल कानों में मुद्दतों बजते रहते हैं।

३६५. भले कामों को, भला, कौन भुलाये भुला सका है?

३६६. काम बताओ पहले काम, यों कहते आते भगवान।
दाम चुकाओ पहले दाम, यों कहते आते शैतान॥

३६७. बेकारी जिसे अखरती है, उसके पास बेकारी क्यों आये?

३६८. इच्छाओं को मसोसो, संतोष बढ़ेगा; धन के बोझ से फूलता संतोष दब या पिचक जाता है।

३६९. देह पर राज हो नहीं पाता, निकल पड़े दुनिया पर राज करने!

३७०. जीवन ईश्वर ने दिया, उसे चमकाये रखना तुम्हारा काम है। वह चमकता है ज्ञान से।

३७१. मत करो दूसरों की सेवा, तुम बेफलवाले पेड़ समझे जाओगे। फिर लोग तुमको ईंधन के लिए काम में लाने की सोचना शुरू कर देंगे।

३७२. विद्या दासी बनकर खुश रह लेती है, ज्ञान वैसा नहीं कर सकता। वह स्वाधीनता-पसंद है।

३७३. अँधेरे में रस्सी को साँप समझकर, उसको पकड़कर दे पटकनेवाला हिम्मती नहीं होता, हिम्मती होता है उजाले में पास से साँप के निकल जाने पर भी ऐसे ही खड़ा रहनेवाला, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

३७४. अनुशासन से नहीं बच सकते, चाहे मन का मानो, चाहे बुद्धि का। मन का अनुशासन बुराइयों के गढे में ढकेलेगा और बुद्धि का अनुशासन भलाई के शिखर पर ले जायगा।

३७५. कम खाने का कर्तव्य न पालन करो, लंघन और परहेज के १० कर्तव्य पालन करना; यह भी नहीं, तो रातों जागने और तड़पने की पीड़ा सहना।

३७६. वीरता नदी है, जिसके दो किनारे है : एक कायरता और दूसरा जल्दबाजी।

३७७. काम तो हाथ-पाँव ही करते है, पर हाथ-पाँव तो मन के बंदे हैं, मन लगने से ही काम ठीक होता है।

३७८. कौन-सी बीमारी है, जो काम से दूर नहीं होती? कौन-सी चिन्ता है, जिसे काम नहीं भगा सकता? कौन-सी गुत्थी है, जिसे काम नहीं सुलझा सकता? काम राम है।

३७९. मन-पहाड़ से इच्छा-नदी को निकलते ही रोको, जरा चूके कि डूबे।

३८०. आज आनंद नहीं आ रहा? कोई भलाई नहीं की होगी।

३८१. धन इकट्ठा किये बिना जी नहीं मानता, ईश्वर जो नहीं है।

३८२. दुश्मन को मारकर छोड़ूँगा, उससे डर जो लगता है।

३८३. पैसे पर सवार सभ्यता प्राण लेकर रहेगी, नीति पर सवार सभ्यता नया जीवन देगी।

३८४. बुढापे मे ज्यादा यश कमाने की सूझती है, ज्यादा जीने की नहीं।

३८५. हार से हारा कोई नहीं, जीत-जीत सब हारे।

३८६. बढता ही चला आता है, बड़ा हिम्मतवाला है, सच्चा भी है!

३८७. बडे आदमी बडे भोले होते है।

३८८. बड़ी-बडी सचाइयाँ बड़ी जल्दी समझ में आ जाती है।

३८९. सुख में जितना समय बरबाद जाता है, जितनी शक्ति खर्च होती है, दु:ख मे उतनी नहीं होती।

३९०. सुख में उत्साह कहाँ? दु:ख में वह होता है, नहीं होता तो याद आती है और फिर वह आ ही जाता है।

३९१. जिनको वक्त का उपयोग करना नहीं आता, वे ही यह शिकायत किया करते है कि वक्त नहीं मिलता।

३९२. आग का धर्म गरमी। वह धर्म उसके साथ हमेशा से है, हमेशा तक रहेगा। आदमी का धर्म आदमियत। वह धर्म न साथ छोड़ सकता है और न बदला जा सकता है।

३९३. जो कभी गिरा नहीं, वह आदमी नहीं; जो गिरकर उठा नहीं, वह भी आदमी नहीं।

३९४. हे ईश्वर, तू मुझे खूब गिरा, ताकि मुझे उठना आ जाय।

३९५. जीभ पै क्यों न लगाम लगाओ,
झूठ बोल फिर क्यों पछताओ?

३९६. मर्दी को बेशक तुम खोना,
हिजड़ा बनकर कुल न बिगोना।

३९७. विष खाकर बेशक मर जाना,
पर न डाह को मन में लाना।

३९८. भीख माँग लो बनो भिखारी,
बुरी चोर-चोरी से यारी।

३९९. मर्दों को भेदों की भूख लगी रहती है, औरतें भेद से भागती है, क्यो? क्योंकि उनको भेद छिपाने में बेहद जोर लगाना पड़ता है।

४००. भंग जिस तरह ज्यादा-से-ज्यादा पीसने से ज्यादा नशीली हो जाती है, वैसे ही आनंद जितने ज्यादा आदमियों में बाँटोगे, बढ़ता जायगा।

४०१. अगर आप यह चाहते हैं कि आपके चले जाने पर भी आप ही चर्चा के विषय बने रहें, तो आप किसीको न बोलने दीजिये, आप ही बोले जाइये।

४०२. तन की जान आत्मा और आत्मा की जान परमात्मा, पर तन अपनी जान को भूले हुए हैं और आत्मा अपनी जान को।

४०३. वह कुछ न बना, जो पक्का इरादा करना नहीं जानता।

४०४. दिलदार आदमी की कद्र होती है, न समझदार की और न रायदार की।

४०५. धर्म या तो कुछ नहीं है या सब कुछ है—प्राण है, जान है, भगवान् है।

४०६. धर्म तो खालिस दूध की तरह मीठा होता है, पर कोई उसे कड़वी तूँबी में रख ले, तो उसका क्या दोष?

४०७. "हमें मरना है" यह ध्यान देने की बात नहीं, काम किये जाओ।

४०८. शेर का शिकारी शोर नहीं करता, मन का शिकारी साँस भी रोककर लेता है। शोर करते हैं वे, जिनको किसीको वस नहीं करना।

४०९. भला दिल कौन देखता है? कौन देख सकता है? भला बर्ताव सब देखते हैं और सब देख सकते हैं।

४१०. ईश्वर अमूर्तिक है, निराकार है और निर्गुण है। उसकी मूर्ति, आकार और गुण कल्पित है। ठीक इसी तरह धर्म अमूर्तिक है, निराकार है, निर्गुण है। उसके रूप भी सबने अलग-अलग गढ रखे है।

४११. महापुरुपों के भक्त एक गाय के नमूने के होते है और दूसरे कुत्ता नमूने के। गाय नमूने जिदगी में पढ़ते है और कुत्ता नमूने के दोनों वक्त, याने जिंदगी में और बाद भी।

४१२. मन में राम जाग जाने से आदमी में कोई अंतर नहीं पड़ता। तार में बिजली आ जाने से तार में भी कब अंतर पड़ता है? अंतर पड़ता है, दोनों के काम में।

४१३. गुरु जैसी सीख मूरख भी दे सकता है, गाय जैसा दूध भैंस भी दे सकती है; पर भीतर पहुँचकर दोनों अलग-अलग असर करते है।

४१४. एक बीज से पैदा होनेवाली जड़, पीड़, डाली, फूल, फल अलग-अलग है। तब आदमियों की एक जड़ होने में शक कैसा?

४१५. बराबर की बुराई और बराबर की भलाई से सब आदमी बने है। फिर अभिमान कैसा? तुम अध्यापक हो, तो लोहार नहीं हो, तुम अन्धे हो, तो लॅगड़े नहीं हो, पर बुरे और भले, दोनों हो। अपने को अच्छी तरह देखो न?

४१६. अस्पताल और मुर्दाघाट रहते क्यों गुरु खोजते फिरते हो ?

४१७. जहाँ काम (कामना) वहाँ राम नहीं, जहाँ राम वहाँ काम नहीं।

४१८. बुढापे में शादी कराने में ही शादी करने का आनंद आता है, ठीक इसी तरह किसीको उठाने में ही उठने का आनंद आता है।

४१९. भलाई, और बुराई, दोनों के भुलाने से ही समता और शान्ति मिलेगी।

४२०. सीधा रास्ता छोड़कर दायें-बायें मुड़ने में गाड़ी को झुकना पड़ता है, आदमी को बदनाम होना पड़ता है।

४२१. आदमी सौ बरस में नया होता है, पेड़ सालभर में, सूरज रोज। आदमी भी रोज नया होता है, हर साँस में नया होता है—अगर वह ऐसा समझे, तो सुस्ती उसके पास न फटके।

४२२. बच्चे बारात के बाजे की तरफ दौड़ते है, तो आदमी राजा की सवारी के बाजे की तरफ दौड़ता है। अन्तर क्या ?

४२३. जहाँ एक को ही जगह है, वहाँ कोई बैठकर यह कैसे कह सकता है कि उसने किसीको गिराया नहीं ?

४२४. सचाई के दामों तो बड़प्पन नहीं खरीदा जायगा।

४२५. दुखियों से कतराते हो, बढ़ोगे कैसे ?

४२६. जिस भलाई को कुरेदकर देखा, नीचे स्वार्थ ही पाया।

४२७. ईश्वर के भरोसे तन छोड़ देना या उसका पोसना छोड़ देना नादानी होगी, यदि तुमने अपना मन भी उस पर नहीं छोड़ा। सन्तों का उपदेश तुम्हारे लिए नहीं, वह तो उन्होंने अपने मन को दिया है।

४२८. छोटी बातों की ओर जो ध्यान नहीं देता, वह बड़ा आदमी नहीं बन सकता।

४२९. जो दूसरों के आराम-तकलीफ का ध्यान नहीं रखता, वह अपना नुकसान तो करता ही है, देश का भी नुकसान करता है।

४३०. अगर आप झूठ से डरने लगेंगे, तो सैकड़ों डरों से बच जायेंगे।

४३१. रीझ शखसियत नहीं, उसका बीज है, मेहनत से फल फूल सकता है।

४३२. प्यार के प्रकाश में ऐब का अँधेरा टिक नहीं पाता।

४३३. उद्देश्य होने से उत्साह बना रहता है, काम रुकता नहीं।

४३४. नमक बड़ी अच्छी चीज है, पर जीभ पर छाले हों, तो लगता है। हँसी बड़ी अच्छी चीज है, पर छाले पड़े मन को बुरी लगती है।

४३५. तन को ढीला छोड़ने से तन की थकान दूर होती है, तब मन को ढीला छोडने से मन की थकान दूर क्यों न होगी ?

४३६. ईश्वर को ज्ञान से जानने की कोशिश करना, ज्ञान की ढीठता है या क्या है, पता नहीं ।

४३७. निष्पाप, निष्काम पैदा हुए आदमी का निष्पाप, निष्काम मरना ही उद्देश्य हो सकता है और होना भी चाहिए ।

४३८. जितने बड़े बनोगे, उतना ही ज्यादा भागना-दौड़ना पड़ेगा । भगवान् भी बन गये, तो भक्तों के लिए भागना पड़ेगा ।

४३९. जितना समय मनुष्य ने अब तक धर्म-प्रचार में खर्च किया, अगर उसका हजारवाँ हिस्सा भी वह अपने चरित्र-निर्माण में खर्च करता, तो दुनिया कितनी उठ गयी होती, इसका अंदाजा नहीं लगाया जा सकता ।

४४०. दानियों ने अब तक जितना दान दिया है, उसका आधा भी अगर उन्होंने नफा कम लेने में गँवाया होता, तो दुनिया का कितना उपकार होता, इसका अंदाजा नहीं लगाया जा सकता ।

४४१. राजाओं ने, ठाकुरों ने, जनरलों ने, कोतवालों ने जितना समय दुनिया पर हुकूमत करने में खर्च किया, उसका हजारवाँ हिस्सा भी अगर अपने ऊपर हुकूमत करने में खर्च किया होता, तो हमारी राय में शायद डाकुओं और चोरों की संख्या आज सौगुनी कम हो गयी होती ।

४४२. आप जितनी फिक्र औरों के बिगड़ने की रखते है, उससे चौथाई फिक्र भी अगर इस बात की रखें कि दूसरे आपके हाथों न बिगड़ने पायें, तो शायद आपको दूसरों के बिगड़ने की फिक्र ही न रखना पड़े।

४४३. आज तक के उपदेशकों ने धर्मोपदेश पर जितना समय खर्च किया है, उतना अगर वे मौन रहकर बिताते, तो संसार का बहुत ज्यादा भला हुआ होता।

४४४. माता-पिता दिनभर में अपने बच्चों के नाम सैकड़ों हुक्म जारी कर देते है, पर वे यह नहीं देखते कि वे हुक्म पूरे हुए या नहीं। क्या अच्छा होता, अगर वे सिर्फ एक हुक्म जारी करते और यह देख लेते कि वह पूरा हो गया या नही।

४४५. न जाने क्यों, मेरा मन बहुत सोचने पर भी यह तय नहीं कर पा रहा कि महापुरुष पैदा होकर और भगवान् अवतार लेकर और पैगम्बरों पर वही उतरकर और ऋषियों को अपौरुषेय ज्ञान होकर जगत् का इतना फायदा हुआ है कि अगर ये सब न होते, तो जगत् टोटे में रहता? या यह कि आज जगत् जितना ऊँचा उठा हुआ है, उससे कम उठा हुआ होता?

४४६. प्रकृति तो यही पाठ देती है कि हम सब परोपकार के लिए पैदा हुए है। हमारे बाप-दादाओं और हमारे ऋषियों का भी यही अनुभव है। फिर परोपकार की याद भी कैसी? नदी जल देकर, पेड़ फल देकर यह सब तो नहीं करते!

४४७. एक ऋषि का कहना है कि ब्राह्मण को भीख माँगकर जीवन बिताना चाहिए, दूसरा ऋषि कहता है, भीख से बढ़कर और कोई नीच वृत्ति नहीं। पता नहीं, दोनों में कौन ठीक है।

४४८. एक ऋषि कहता है, सूद पर रुपया उठाने की वृत्ति से बढ़कर कोई वृत्ति नहीं, दूसरा कहता है, सूद लेने से बढ़कर कोई पाप नहीं। पता नहीं, कौन-सी बात ठीक है।

४४९. ऋषियों ने मनुष्यों को जिस तरह जीवन बिताने के पाठ दिये है, वैसा जीवन पशु-पक्षियों में से तो कुछ बिताते हुए दिखाई पड़ते है, पर मनुष्य तो बहुत ही कम दिखाई देते है। और जो थोड़े-बहुत दिखाई देते है, वे भी पशु-पक्षी जितना अच्छा जीवन बिताते हुए नही पाये जाते। कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये पशु-पक्षी मनुष्य से ऊँचे दर्जे के प्राणी हों?

४५०. पशु-पक्षियों मे से हमने किसीको इस तरह रोते हुए नहीं देखा, जिस तरह आदमी और उसके बाल-बच्चे रोते है। पता नहीं, यह रोना उन्नति का द्योतक है या अवनति का!

४५१. देह की सेवा देह करती है, आत्मा तो करता नहीं। फिर देह-सेवा में लगे हुए आदमी की इतनी अवहेलना क्यों की जाती है?

४५२. अगर दुनिया से एक महीनेभर के लिए भी दान-प्रथा उठ जाय, तो मेरा यह खयाल है कि दुनिया के सारे झगड़े मिट जायँ।

४५३. यह क्या बात है कि आज तक सारे आदिमवासी और जंगली लोग सच्चे पाये जाते है, चोरी नहीं करते, ब्रह्मचर्य से रहते हैं, परिग्रह बहुत कम रखते है, हिंसा भी औरों से कम करते है और अवतारों, ऋषियों, पैगम्बरों से सीख पाये हम सब सभ्य कहलानेवाले और जंगलियों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझे जानेवाले न सच बोलते हैं, न चोरी से बच पाते है, परिग्रह बढाते चले जा रहे है, ब्रह्मचर्य क्या है, इसे भूल तक गये हैं, हिसा में तो इतने आगे बढ गये है कि भेड़िया हमें देखकर दॉतों तले उँगली दाबकर रह जाता है ।

४५४. मुझे अपने बच्चे कभी ऐसी बुराई करते हुए नहीं मिले, जिसकी वजह से उन्हें मुझे मार डालने की बात सूझे या और कोई भारी सजा की बात सूझे । तो क्या ईश्वर को, जिसके हम सब बच्चे हैं, हमारी ऐसी कोई बुराई नजर आ सकती है, जिसकी वजह से हमें नरक की या दोजख की सजा दी जाय ?

४५५. ये क्या पाठशालाएँ है कि किताबें पढाती है, पर यह नहीं सिखाती कि पानी क्या है और क्या-क्या रूप ले लेता है । मिट्टी क्या है और क्या से क्या हो जाती है; हवा क्या है और किस तरह चक्कर काटती फिरती है; आग क्या है और क्या-क्या चमत्कार दिखा सकती है और यह कि आकाश कुछ नही है, पर वही सब कुछ है ।

४५६. दवा जरूरत के लिए घर में रखी जा सकती है, रखी जाती है, पर रोज खाई नहीं जाती—अगर खाई जाय, तो फायदा नहीं, नुकसान करेगी। मेरी राय में तो बड़े-बड़े ग्रंथ और सभी अच्छी किताबें संग्रह करने के योग्य हैं, जरूरत पड़ने पर हवाले का काम दे सकती है, रोज-रोज नहीं पढी जानी चाहिए। रोज-रोज पढने से वे मनुष्य को हानि ही पहुँचाएँगी, लाभ नहीं।

४५७. अगर हाथ ही हाथ बढाये जाना बुरा है या इसी तरह कोई और एक अंग बढाये जाना बुरा है, तो चरित्र बढाये बिना ज्ञान बढाये जाना बुरा क्यों नहीं !

४५८. जो लोग अपने को नहीं सुधार पाते, न जाने कैसे वे दूसरों को सुधारने की हिम्मत कर जाते है।

४५९. जिसे समय-विभाग बनाकर रहने का अभ्यास नहीं है, उसमें अगर समय-विभाग बनाकर रहने की उमग उठ बैठे, तो उसे चाहिए कि वह उस उमग को दबाये। समय-विभाग बनाकर रहने के स्थान में वह कार्य-विभाग बनाकर रहना सीखे। यानी यह कि वह रोज सुबह उठते ही यह तय कर लिया करे कि आज कौन-कौन काम करना है और शाम को उनकी जाँच कर लिया करे। इसमें सफल होने के बाद ही वह समय-विभाग बना-कर रह सकेगा।

४६०. संस्कृत का शब्द 'सर्व' हिन्दी के शब्द 'सब' से एकदम मिलता-जुलता है, एकार्थवाची है। पर हिन्दी के 'सब'

शब्द से कोई भी आदमी 'सब' अर्थ नहीं लेता, 'बहुत ही' अर्थ लेता है। जिस तरह सब लोग खा चुके, सब काम हो गये, सब कुछ सीख लिया, सब जगह ढूँढ़ ली इत्यादि। फिर भी न जाने 'सर्व' शब्द का अर्थ 'बहुत' न करके 'सब' क्यों करते है ?

४६१. भाषा गणित नहीं है। जो आदमी उसे गणित की तरह सत्य समझता है, वह या तो अज्ञानी है या धूर्त है।

४६२. गणित बेहद सच्चा और ठीक विज्ञान है। पर कही-कही उसको भी हार खानी पड़ी है। अंकगणित दो का वर्गमूल नही निकाल सकता। लेकिन रेखागणित उसे पूरा-पूरा निकाल देता है।

४६३. साहित्य ने गणित के जिन उदाहरणों को लेकर जिस बात को सिद्ध किया है, अगर गणित के सिद्धांत ही बदल जायँ, तो साहित्य के उन सिद्धांतों को धक्का पहुँचेगा या नहीं ? उदाहरण के लिए पहले समानान्तर रेखाएँ आपस में नहीं मिलती थीं, पर अब तो वे दोनों ओर मिलने लगी है। अब तो छोटी लकीर भी बड़ी लकीर के बराबर साबित की जा सकती है।

४६४. किसीके अस्त के बिना किसीका उदय हो ही नहीं सकता। किसीके ह्रास के विना किसीका विकास नहीं हो सकता। इस द्वंद्वात्मक जगत् में द्वंद्व दो पहलुओं का एक नाम है। इसीलिए यह खूब अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सर्वोदय में सर्वास्त निहित है। जिस तरह सूर्य के उदय में उसी क्षण सूर्यास्त

निहित है, क्योंकि जब वह भारत में उदय होता है, तो अमेरिका में अस्त हो रहा होता है। ठीक इसी तरह हम सबके उदय में हम सबका अस्त निहित है। सिर्फ दृष्टिभेद है और यही है जैनों का और आइंस्टाइन का सापेक्ष सिद्धान्त।

४६५. तुम जब भी किसी सचाई पर जोर दो, तो उसके उस अंश को जरूर ध्यान में रखो, जो सच नहीं है।

४६६. दुनिया का कोई पदार्थ केवल सत्य नहीं है, न हो सकता है, न कभी होकर रहेगा, क्योंकि वह सत्यासत्य है।

४६७. जब भी हम यह कहते हैं कि अमुक चीज निरपेक्ष है, तो हम ऐसी चीज का जिक्र कर रहे होते हैं जो लौकिक न होकर पारलौकिक है।

४६८. निरपेक्ष सत्य कभी हाथ लगेगा, इसकी तो बात ही छोड़िये, निरपेक्ष सत्य कभी समझ में भी आ सकेगा, यह कहना तक मुश्किल है।

४६९. जो आदमी अपने सिद्धांत का खंडन करना नहीं जानता, वह उसके मंडन करने की बात न सोचे।

४७०. सारे सिद्धान्त उदाहरण के आधार पर टिके होते हैं। आधार निकला कि वे धम से गिर पड़ेंगे। आधार निकलने का अर्थ है, उससे विपरीत उदाहरण का समक्ष आना।

४७१. दुनिया में सिद्धांत गढ़नेवाले सिद्धांत गढ़ने के

सिवा और कुछ नहीं कर सकते। काम करनेवाले काम करते हैं, सिद्धांत नहीं गढ़ते।

४७२. दुनिया के उचान-निचान को मिटाने की सोचना साँप की पूँछ को फन जितना मोटा करना है या पेड़ की जड़ों को मिलाकर पीड़ में परिवर्तित करना है। पर क्या फिर साँप साँप रह जायगा और पेड़ आँधी के झोंके सह सकेगा या जीवित रह सकेगा?

४७३. निचान को निचान समझिये, नीचे को नीचा कहिये, पर तिरस्कार के भाव से नहीं। समंदर तो सबसे नीचे में है, पर वह तो महान् है।

४७४. ऊँच-नीच मिटाने चले है और अपनी दृष्टि ठीक नहीं करते!

४७५. इस आदमी की ढीठता तो देखिये कि जो सूरज ठीक वक्त से आता है, उसको कहता है कि वह ठीक वक्त से नहीं आता। चाहिए तो यह था कि जिस वक्त सूरज निकलता, उस वक्त हम सब अपनी घड़ियाँ ठीक करते और जो वक्त तय कर लेते, वही बजाया करते। पर हो रहा है यह कि हम अपनी घड़ियों से सूरज का निकलना और सूरज का डूबना बताते है।

४७६. हम पृथ्वी से पैदा है, पृथ्वी सूरज से पैदा है। तिस पर हमारी हिम्मत देखिये कि हम सूरज पर टीका करते है।

४७७. कला की उन्नति इस बात में नहीं है कि वह कितनी निश्चयात्मक हो गयी है, यानी कितनी सचाई लिये हुए है; किन्तु इस बात में है कि उससे जनता का कितना उपकार हो रहा है।

४७८. विज्ञान की उन्नति इस बात में नहीं है कि विज्ञान कितना गहरा पहुँच गया और कितना ऊँचा चढ़ गया; किंतु इस बात में है कि विज्ञान जनता को कितनी राहत पहुँचा रहा है।

४७९. कला और विज्ञान की उन्नति की कसौटी है जनता का उपकार और जनता की राहत, जनता का आनन्द और जनता का सुभीता। अगर कला और विज्ञान ये चीजें देने में असमर्थ रहे, तो यह न समझना चाहिए कि वे उन्नति कर रहे हैं, यही समझना चाहिए कि वे अवनति कर रहे हैं।

४८०. कला के साथ-साथ अगर हमारा हृदय विकसित नहीं होता, तो समझना चाहिए कि कुछ ही दिनों में कला डायन बनकर हमें ही नहीं, हमारी जाति को खा जायगी।

४८१. विज्ञान उन्नत होकर अगर मनुष्य को उदार आशय नहीं बनाता, तो यह समझना चाहिए कि वह हमें खा जाने के लिए पैदा हुआ है, और बड़ा होकर हमें खा जायगा।

४८२. हम चाहे समझें या न समझें, पर कंस और कंस जैसी प्रकृति के मनुष्य अच्छी तरह समझते है कि भगवान् भले नहीं होते और भलाई के लिए जन्म भी नहीं लेते। तभी तो कंस

ने ऐसे काम किये, जिसे भले ही हम दुष्कर्म कह लें, पर उसके लिए वह दुष्कर्म नहीं थे।

४८३. अगर अमेरिका ऐटम और हाइड्रोजन बम को भगवान् की देन और उसके बनानेवाले को अवतारी पुरुष माने, तो वह कोई गलती नहीं करेगा, क्योंकि अमेरिका अपने को साधु और एशियावासियों को दुष्ट समझता है और भगवान् का अवतार साधुओं के परित्राण और दुष्टों के नाश के लिए ही तो होता है।

४८४. हम प्राकृतिक वस्तुओं की उमर बढाकर भला करते है, यह कहना जरा मुश्किल है। उमर बढाकर चीजें संग्रह की जा सकती है और संग्रह करना साधुजन धर्म नहीं मानते।

४८५. प्राकृतिक वस्तुओं की अगर हम उमर बढाना छोड़ दें, तो सैकड़ों झंझटों से बच जायँ और सैकड़ों रोगों से मुक्ति पा जायँ।

४८६. कला जब तक बिक्री की चीज रहेगी, तब तक चोरी और डाका, ठगी और महायुद्ध कभी न रुक सकेंगे।

४८७. सत्साहित्य जहाँ बिक्री की चीज बना, वहाँ प्रभावहीन हुआ।

४८८. न वाल्मीकि बिके न व्यास; न तुलसी बिके न सूर; इसलिए वे अपने समय में न जाने कितनों का चरित्र-निर्माण कर गये। पर आज के साहित्यकार या कवि कितना ही अच्छा लिखकर

जो चरित्र-निर्माण नहीं कर पा रहे, इसका कारण है कि वे बिक रहे है और बिकने के लिए ही लिखते है; फिर चाहे उनका नाम कुछ भी क्यों न हो।

४८९. हिटलर-स्टालिन की बिक्री अब क्यों कम हो गयी? कभी किसीने इस बात पर नजर डाली? सुना है. गांधी-साहित्य भी कम बिक रहा है।

४९०. जो यह कहता है कि ज्ञान अपने आपमें एक महान् सुख है, वह अपने को धोखा देता है। खाने, पहनने या रहन-सहन की किसी भी चीज का ज्ञान जब न हमारी भूख मिटा सकता है, न हमें सर्दी-गर्मी से बचा सकता है, न हमारी तूफान और मेह से रक्षा कर सकता है, तब उसे महान् सुख कैसे कहा जा सकता है? सुख अमल में है, ज्ञान मे है ही नहीं। श्रद्धान् और ज्ञान जड, पीड, पत्ते, डाली, कली, फूल भले ही हो; पर फल नहीं है। फल है अमल यानी चारित्र और फल ही सुखदायी होता है।

४९१. अगर हमने दूध से मक्खन न निकाला होता या कम-से-कम मक्खन का घी ही न बनाया होता, तो आज हम सैकड़ों बीमारियों से बचे होते। यही बात गेहूँ से बनाये हुए मैदा के बारे में भी कही जा सकती है।

४९२. देखने में भले ही चार भाग में से पृथ्वीतल का एक भाग खुश्की और तीन भाग पानी हो, पर वास्तव में भूमि के

गोले के हिसाब से तो पानी कुछ भी नहीं है। कहाँ पृथ्वी के गोले का चार हजार मील का अर्ध-व्यास और कहाँ बड़े-से-बड़े समंद्र की छह-सात मील की गहराई। फिर इस समन्दर से डर किस बात का?

४९३. क्या भूतल का एक-चौथाई भाग इतने आदमी पैदा कर सकता है, जिनको उसका तीन-चौथाई भाग खाना न जुटा सके? यह कितनी बड़ी विडम्बना है?

४९४. काई, जो पानी पर जमती है, सुना गया है कि उसमें इतने पौष्टिक तत्त्व है कि वह बढ़िया-से-बढ़िया चीज की जगह ले सकती है और यह भी सुना गया है कि वह इतनी तेजी से बढ़ती है कि उसकी बढ़वारी का दुनिया की कोई वनस्पति मुकाबला नहीं कर सकती। क्या अब भी अर्थशास्त्रियों को लोगों के भूखों मरने का डर बना ही रहेगा?

सफलता

४९५. अकेले अवसरवादी होने से सफलता हाथ न लगेगी, न होशियारी ही काम आ सकेगी। उसके लिए जरूरत होती है एकाग्रता की और अध्यवसाय की।

४९६. 'धर्म की अन्त में जय होती है, यह बहुत पक्की दलील है।' अन्तरात्मा को ऐसा धोखा कभी न देना। हाँ, इसमें सौ फी सदी आदमी फँसते है।

४९७. सफलता है टिकाव में और टिकाव है बीच में, अति में नहीं।

४९८. जोश को ठंढा रखो, इच्छाएँ कम करो, तुम सफल हो।

४९९. जिन्हें जीतने की धुन है, उन्हें बुरे-भले से क्या लेना-देना ? यह कोई सफलता है ?

५००. सफलता पर अभिमान की घास उगकर रहती है; ध्यान रखना !

५०१. सफलता बड़े लालच देगी। पर मिलने पर कुछ न मिलेगी। सराय है सराय।

५०२. सफल होने में कितने दिन लगेंगे, यह मानना ही क्या कम सफलता है ?

५०३. सफल तो हो ! पता चलेगा कि सफलता पाँच व्रतों का निचोड़ है।

५०४. सफलता पाल है।

५०५. सफलता में एक भलाई है—वह बुराइयों पर पर्दा डाल देती है।

५०६. आदमी को देखो, वह किस तरह जीतता है। यह न देखो कि किस तरह हारता है। हार में अभिमान मदद करता है, जीत में वह भाग जाता है।

५०७. सफल होना तय कर लिया, तो फिर हार कैसी ?

५०८. आत्मविश्वास + आत्मस्वीकृति + अध्ययन + अभ्यास = सफलता ।

५०९. सफलता के पीछे पड़कर भलमनसी न खो बैठना। इतिहास में सफलता है, भलमनसी नहीं।

५१०. सफलता जीवन का एक पहलू है। असफलता और गरीबी के विना न तुम अपने को पहचान सकते हो, न परायों को। ऐब तो दुश्मन ही बनायेंगे, दोस्त तो बनाने से रहे।

५११. सफलता का जामा बेवकूफों—बदमाशों पर ऐसे ही ठीक बैठता है, जैसे ज्ञानियों और भलेमानसो पर।

५१२. सफलता बड़ी अच्छी चीज सही, पर भलमनसी उससे अच्छी चीज है। कहीं उसको न खो बैठना।

५१३. भलमनसी के बदले सफलता लेकर नाम पा सकते हो, मन का चैन नहीं।

५१४. सफलता तुम्हारे मन को ऊँचा नहीं उठाती, तुमको उठाती है। वह एक चबूतरा है।

५१५. मै मीठे फल देता हूँ, सफल हूँ !

५१६. पाप को जरा फलने तो दो, पुण्य बन जायगा।

५१७. सफलता आदमी के वश में है, यह जोर के साथ नहीं कहा जा सकता।

५१८. 'अंधे के हाथ बटेर लगी', उसके घरवाले नहीं कहते।

५१९. सफलता के लिए साधन बहुत, पर उनका इस्तेमाल किसी-किसीको आता है।

५२०. अध्यवसाय से जरा दोस्ती करो तो, अनुभव से सलाह लो तो, होशियारी का हाथ पकड़ो तो, आशा की सुनो तो, सफलता दौड़ी-दौड़ी आयेगी।

५२१. सफलता न एक चीज का नतीजा है, न एक आदमी का, वह बहुतों की मेहनत है।

५२२. जो कभी सफल नहीं हुए, उन्हें सफलता बड़ी प्यारी लगती है।

५२३. चिपके रहो, सफल होगे।

५२४. दीपक जलकर सफल होता है, याद रहे।

५२५. फोकस में आना सफलता है।

५२६. कुछ करो तो, तुम्हारे घर तक सड़क बन जायगी।

५२७. सफलता और संतोष साथ नहीं रहते।

५२८. प्रसिद्धि, ऐश, धन और बाहरी सफलता घृणा की चीजें है।

५२९. यह नहीं हो सकता, पर मै कैसे कहूँ ?

५३०. सफलता पठार है, पहाड़ नहीं।

५२१. कुछ-कुछ ठीक करना असफलता, बिल्कुल ठीक करना सफलता।

ब्रह्मचर्य

५२२. ब्रह्मचर्य शब्द जितना पवित्र और पूज्य है, उतना ही डरावना है। पवित्र और पूज्य चीजें डरावनी नहीं होनी चाहिए। पर हमारे बड़े-बूढे हममें उनका डर बैठा देते है। उनका खयाल है कि डर फायदा करता है; हमारा खयाल है डर नुकसान करता है और शायद हमारी ही बात ठीक है।

५२३. किसीसे भी ब्रह्मचर्य की बात कहिये, तो वह समझेगा कि ये मुझे साधु बनाना चाहते है, इसलिए बचकर भागेगा। वह करे क्या? वह अपनी आँखों गेरुए कपडे पहने हुओं को 'ब्रह्मचारी' शब्द से पुकारे जाते हुए देखता है।

५२४. महावीर और बुद्ध से पहले पार्श्वनाथ हो गये। उन्होंने चार ही व्रत रक्खे थे। ब्रह्मचर्य को व्रतों में स्थान ही नहीं दिया, क्योंकि उनके समय में आदमी ब्रह्मचर्य का जरूरत से ज्यादा खयाल रखते थे।

५२५. आमरण ब्रह्मचारी रहना अच्छी चीज है, यह जोर के साथ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि जो-जो आमरण ब्रह्मचारी रहे, न वे मामूली आदमियों से ज्यादा मजबूत मिले, न बुद्धिमान्।

५२६. छाती पर हाथी चढ़ा लेनेवाला राममूर्ति बेशक

ब्रह्मचारी था, पर उसका यह काम ब्रह्मचर्य से कोई संबंध न रखता था। क्योंकि उसके बाद उसके सब तमाशे गैर-ब्रह्मचारी आदमी करने लगे, जो छह-छह बच्चों के बाप थे और काफी वृद्ध हो चुके थे।

५३७. हमारा तो यह खयाल है कि प्रकृति यह नहीं चाहती कि कोई आमरण ब्रह्मचारी रहे। किसी गड़बड़ से अगर कोई ऐसा बच्चा पैदा हो जाता है, जिसे आमरण ब्रह्मचारी रहना ही पड़े, तो वह हिजड़ा कहलाता है, जो मामूली-से-मामूली आदमी से भी कमजोर होता है।

५३८. ब्रह्मचर्य शब्द का अगर डर निकाल दिया जाय, तो ब्रह्मचर्य का जबरदस्त प्रचार हो सकता है। क्योंकि सारा पशु-पक्षी जगत् ब्रह्मचर्य से रह रहा है और जितना बलवान् होना चाहिए, उतना बलवान है।

५३९. यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि बल और बुद्धि का संबंध पूर्ण ब्रह्मचर्य से बिल्कुल नहीं है। यही हाल बहादुरी का है। यही हाल सारे अच्छे गुणों का है।

५४०. बच्चेवाली शेरनी जिस बहादुरी से लड सकती है, निपूती शेरनी नहीं। यही हाल नर की नारी का है।

५४१. बल और बुद्धि के लिए अध्यवसाय और प्रेम की जरूरत होती है, पूर्ण ब्रह्मचर्य की नहीं।

५४२. पूर्ण ब्रह्मचारी की आवश्यकताएँ कम हो जाती है,

उसका प्रेम-पुष्प मुरझाकर रह जाता है; इसलिए वह मामूली आदमियों से ज्यादा बलवान् या बुद्धिमान् नहीं होता।

५४३. ब्रह्मचर्य अपने आपमें कोई उद्देश्य नहीं है। ब्रह्मचर्य उद्देश्य होना भी नहीं चाहिए। किसी काम के प्रति जोर की लगन मनुष्य को ब्रह्मचारी बनने के लिए मजबूर कर देती है और वह ब्रह्मचर्य सच्चा ब्रह्मचर्य होता है।

५४४. देवव्रत ने ब्रह्मचर्य लिया नहीं, एक प्रतिज्ञा की लगन ने उसे पूर्ण ब्रह्मचारी बना दिया और भीष्मपितामह नाम पा गया। पर पूर्ण ब्रह्मचारी भीष्म और साधारण ब्रह्मचारी कृष्ण में तुलना करके देख लीजिये, बल-बुद्धि के जितने अच्छे काम कृष्ण कर सके, भीष्म नहीं कर सके।

५४५. वह आदमी ब्रह्मचारी ही है, जिसने अपने चित्त को एकाग्र करना सीख लिया है, फिर चाहे वह दर्जनभर बच्चों का बाप ही क्यों न हो।

५४६. वह आदमी ब्रह्मचारी ही है, जिसे किसी चीज की जोर की लगन लग गयी है। फिर चाहे उसकी दो औरतें क्यों न हों।

५४७. वह आदमी ब्रह्मचारी है, जो लोक-संग्रह करना जानता है।

५४८. वह आदमी ब्रह्मचारी है, जिसे अपने समय पर अधिकार है।

५४९. वह आदमी ब्रह्मचारी है, जिसकी इच्छाएँ काबू में है।

५५०. वह आदमी ब्रह्मचारी है, जो भेदभाव नहीं करता।

५५१. वह आदमी ब्रह्मचारी है, जिसे मौत का डर नहीं है।

५५२. वह आदमी ब्रह्मचारी है, जो नेकी करके भूल जाता है।

५५३. वह आदमी ब्रह्मचारी है, जो रुपये को सब कुछ नहीं मानता।

५५४. वह आदमी ब्रह्मचारी है, जिसे अपने अन्दर नजर डालना आता है।

५५५. वह आदमी ब्रह्मचारी है, जिसमें आत्म-विश्वास है।

५५६. वह आदमी ब्रह्मचारी है, जो ऐसे विचारों को मन में नही आने देता, जिससे उसका कुल देश या समाज बदनाम होगा। ऐसा ब्रह्मचारी फिर ऐसी बात कह तो कैसे सकेगा और ऐसे काम कर तो कैसे सकेगा, जिनसे उसके देश को नीचा देखना पड़े।

सर्वोदय और भूदान-साहित्य

(विनोबा)

	रु० पैसा
गीता-प्रवचन	१—०
शिक्षण-विचार	१—५०
कार्यकर्ता-पाथेय	०—५०
त्रिवेणी	०—५०
विनोबा-प्रवचन (सकलन)	०—७५
साहित्यिको से	०—५०
भूदान-गगा (छह खंडों मे)	६—०
ज्ञानदेव-चिंतनिका	१—०
जनक्राति की दिशा मे	०—२५
भगवान् के दरबार मे	०—१३
गाँव-गाँव मे स्वराज्य	०—१३
सर्वोदय के आधार	०—२५
एक बनो और नेक बनो	०—१३
गाँव के लिए आरोग्य-योजना	०—१३
व्यापारियों का आवाहन	०—१३
हिंसा का मुकाबला	०—१६
चुनाव	०—१३
अम्बर चरखा	०—१३
ग्रामदान	०—७५
मजदूरों से	०—१३

(धीरेन्द्र मजूमदार)

	रु० पैसा
शासनमुक्त समाज की ओर	०—५०
नयी तालीम	०—५०
ग्रामराज	०—२५

(श्रीकृष्णदास जाजू)

संपत्तिदान-यज्ञ	०—५०
व्यवहार-शुद्धि	०—३८
अ० भा० चरखा-सघ का इतिहास	३—५०
चरखा-सघ का नव-संस्करण	१—५०

(दादा धर्माधिकारी)

सर्वोदय-दर्शन	२—०
मानवीय क्राति	०—२५
साम्ययोग की राह पर	०—२५
क्राति का अगला कदम	०—२५

(अन्य लेखक)

नक्षत्रों की छाया मे	१—५०
भूदान-गंगोत्री	२—५०
भूदान-आरोहण	०—५०
श्रम-दान	०—२५

भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों?	१— ०
सफाई : विज्ञान और कला	०—७५
सुन्दरपुर की पाठशाला	०—७५
गो-सेवा की विचारधारा	०—५०
विनोबा के साथ	१— ०
पावन-प्रसंग	०—५०
छात्रों के बीच	०—३१
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	०—२५
सर्वोदय-सयोजन	१— ०
गाधी : एक राजनैतिक अध्ययन	०—५०
सामाजिक क्राति और भूदान	०—३१
गाँव का गोकुल	०—२५
ब्याज-बट्टा	०—२५
भूदान-दीपिका	०—१३
पूर्व-बुनियादी	—५०
ग्राम-स्वावलंबन को	
सर्वोदय-भजनावलि	०—२५
क्रांति की पुकार	०—२५
राजनीति से लोकनीति की ओर	०—५०
नवभारत	४— ०
सत्संग (विनोबा की मुलाकातें)	०—५०
क्रांति की राह पर	१— ०
क्रांति की ओर	१— ०
सर्वोदय-पद-यात्रा	१— ०
दादा का स्नेह-दर्शन	०—२५
ताई की कहानियाँ	०—२५
नये अकुर	०—२५
सत्य की खोज	१—५०
गाँव-आंदोलन क्यों ?	२—५०
सर्वोदय-सम्मेलन-रिपोर्ट	१— ०
भूदान का लेखा (आँकड़ोंमें)	०—२५
धरती के गीत	०— ६
भूदान-लहरी	०— ६
भूदान-यज्ञ-गीत	०— ६
सत्याग्रही शक्ति	०—३१
मानस मोती	०—२५
आज का धर्म	०—५०
पावन-प्रकाश (नाटक)	०—२५
विनोबा-संवाद	०—३८
जीवन-परिवर्तन (नाटक)	०—२५
बापू के पत्र	१—२५

(उर्दू-साहित्य)

गीता-प्रवचन	१— ०
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों?	१—२५
सपत्तिदान-यज्ञ	०—५०
एक बनो नेक बनो	०—२५
ताजीरों को दावत	०—१३
भूदान : सवाल-जवाब	०—३८
तालीमी नजरिया	२— ०